शिखरोंका सेतु

शिवप्रसाद सिंह

•



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१६२

ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन

●

SHIKHARON KA SETU

[Stories & Belles-essays]

Dr SHIVA PRASAD SINGH

Publication

Bharatiya Jnanpeeth Kashi

First Edition 1962

Price Rs. 3.50

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

मुद्रक

सन्मति मुद्रणालय वाराणसी

प्रथम संस्करण १९६२

मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे

●

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीत प्रीतिप्रमुखवचन स्वागतं व्याजहार

— मेघदूत

ललिअ णिबन्धहँ खेत्ति महँ, कप्पलआ विथ्थार किय
कम्म छइल्ल मण मम्मरहि, जिण असोय कहँ फुल्ल दिय
तिहि गुरुवरहिं दुवेइ कहुं, णेह णमिय भावेन
कुटय थवक समप्पियउ, सिंह सिव पस्सावेन

ललित निबन्धोंके क्षेत्रमें 'कल्पलता'का विस्तार किया
छद्म-विदग्ध मनोंके मन-भौंरोंको जिन्होंने 'अशोकके फूल' दिया
उन्हीं गुरुवर द्विवेदीको नेह नमित भावसे
कुटज फूलोंका यह स्तवक शिवप्रसाद सिंहने समर्पित किया

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१६३
ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

SHIKHAROV KA SETU
[Stories & Belles-essays]
Dr SHIVA PRASAD SINGH
Publication
Bharatiy Jnanpeeth Kashi
First Edition 1962
Price Rs. 3.50

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६२
मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागत व्याजहार
— मेघदूत

ललिअ णिबन्धहँ खेत्ति महँ कप्पलआ वित्थार किय
कम्म छइल्ल मण भम्मरहिँ, जिण असोय कहँ फुल्ल दिय
तिहिँ गुरुवरहिँ दुवेइ कहँ णेह णमिय भावेन
कुटय थवक्क समप्पियउ, सिँह सिउ पसावेन

ललित निबन्धोंके क्षेत्रमें 'कल्पलता'का विस्तार किया
कर्म-विदग्ध मनोंके मन-भौंरोंको जिन्होंने 'अशोकके फूल' दिया
उन्हीं गुरुवर द्विवेदीको नेह नमित भावसे
कुटज फूलोंका यह स्तबक शिवप्रसाद सिंहने समर्पित किया

आशाबन्ध

अपने कथात्मक ललित क्वचित् वैचारिक रमणीय निबन्धोंका यह संकलन आपके हाथोंमें सौंपते हुए मैं एक दुहरे आशाबन्धका अनुभव कर रहा हूँ। एक सार्वजनिक बाह्य और दूसरा व्यक्तिगत आन्तरिक। साहित्यका मर्मज्ञ सुधी पाठक लेखकसे कुछ आशा करता है कुछ सम्भावनाएँ रखता है – प्राप्यकी और प्रमोष्यकी काम्यकी। उसकी यह आशा सहज और स्वाभाविक है। किन्तु लेखकके अन्तर्मनमें भी एक आशाबन्ध है उसकी ललक और काम्यता भी होती है जिसके भीतर वह पाठकके समक्ष आत्मिक स्तरको खोलनेका अनजानमें ही सही प्रयत्न करता है। रचना प्रक्रिया और सृजनके दौरसे गुजरा हुआ लेखक कुछ तो कृतिके प्रति अपनी अविच्छेद्य आत्मीयताके कारण मोहसे और कुछ अपने प्रयत्न और पीड़ाके प्रतिदानमें न सही तो स्वीकृतिमें आग्रहसे पाठकसे सहचिन्तन या सहानुभूति की आशा करता है।

इस संकलनमें मेरी छोटी-बड़ी बाईस गद्य-कृतियाँ संगृहीत हैं। कृतियाँ इसलिए कि इन्हें मैंने गद्य-विधाओंकी बँधी-बँधाई परिपाटीमें डालनेका सचेत प्रयत्न नहीं किया है। इस विषयपर मैं संक्षेपमें आगे कुछ निवेदन करूँगा। इन कृतियोंको विषयकी दृष्टिसे और कथ्यकी परिधिको देखते हुए चार खण्डोंमें उपस्थित किया गया है, अतीतके तोरण अबोले बोले पुष्पके अभावमें तथा निबन्ध चिन्तन। ये वृत्त परस्पर स्वतन्त्र हैं, किन्तु वे एक दूसरेको सापेक्ष्यसे काटते हुए भी दिखायी पड़ेंगे और यह अच्छा ही है, क्योंकि तभी अनेक कथाओं और कल्पनाओंका जन्म होता है।

अतीतके तोरण' यह बाह्य फलक है जिसके गवाक्षसे प्राचीन अपनी समस्त रूप-विरूप आकृतियों और रंग-अवरंग दृश्योंके साथ दिखायी पड़ता

है। अतीत मेरे मनपर एक जड़ पाषाण-प्रतिमाके रूपमें अंकित नहीं है। उसके दिगन्तव्यापी आविल और धुँधले क्षितिजपर सहस्रों उठे हुए स्तूप हैं खण्डहर और भग्नावशेष हैं जिनकी काल-जर्जरित कायापर तरह-तरहके अपाठ्य अक्षरोंके पुरालेख पक्षियोंके पद-चिह्नोंकी तरह इधर-उधर बिखरे पड़े हैं किन्तु यह सब कुछ अतीतका बाह्य स्थूल कलेवर है उसकी शीतल-सुगन्ध भरी आत्मा तो इनके भीतर है महाराशि जहाँ अनन्त सिन्धुकी चंचल लहरें सुदूर और पासके तट किनारोंसे निरन्तर टकराती रहती है। मैं अतीतके आरपार इसी सिन्धुका उच्छल रूप दिखाना चाहता हूँ उसके उच्छ्वसित रूपका संगीत आपके निकट ले आना चाहता हूँ किन्तु मुझे यह कहनेमें संकोच भी कम है कि मैं इस अपार जलराशिके तटपर एक क्षण रुककर अभी तक चमकीली सीपियाँ और उपेक्षित शंख और घोंघे ही बीन सका हूँ। हो सकता है कि मेरे मनका अभाव सिन्धु इसे ही रत्नराशि मानकर हर्ष-विह्वल हो गया हो किन्तु यह निर्णय भी तो आपको ही करना है, पर तब आपको कुछ अतीत मान्यताके चिन्त-बाधासे अलग रहना पड़ेगा तटस्थ होना पड़ेगा।

आज नवीनतम चमत्कृत करनेवाले प्रकाशने हमारे सामने मनुष्य और जगत् तथा शरीर और आत्माके सम्बन्धके विषयमें अनेक नये प्रश्न खड़े कर दिये हैं। विज्ञानकी निरन्तर विकासशील शक्ति हमारे जीवनके नानाविध प्रश्नोंको सुलझाने समस्याओंका समाधान करने तथा बाधाओं-को मिटानेमें सहायक हो रही है। विज्ञान मनुष्यकी अपूर्व मेधा-शक्ति और उर्वरा बुद्धिका परिणाम है। प्रकृति और मनुष्यके बीच संघर्षको मिटाकर एक सन्तुलित समझौते-समभाव स्थिति लानेमें विज्ञानका योगदान अतुलनीय है किन्तु विज्ञानकी आन्तरिक प्रक्रियाके सही ज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले परिवर्तनोंके वास्तविक स्वरूपकी जानकारीके अभावमें हम जीवनके ऊपरी धरातलपर होनेवाले बौद्धिक-विमर्शको ही सत्य स्वीकार कर लेते हैं। विज्ञानके नामपर आधुनिक जीवन परिवर्तनके

नामपर परम्परा द्रोह तथा सम्भ्रमके नामपर अतिवादिताको स्वीकार करना ज्यादा आसान है। इसी कारण इधर हमारे जीवनमें एक अजीब तरहकी विषमता संकरता अथवा कृत्रिमताकी प्रधानता दिखायी पड़ती है। वैज्ञानिक प्रक्रिया ही मशीनी सभ्यताके मूलमें निहित रहा है किन्तु मशीनोंसे उत्पन्न हर वस्तु उपयोगी सत्य ही नहीं है। परम्पराकी तरह विज्ञानके भी कुछ अन्धविश्वास हैं कुछ रूढ़ियाँ हैं। असल्में समझनेकी जरूरत है वैज्ञानिक प्रक्रियाको। जो व्यक्ति विज्ञानकी सही प्रक्रियाको समझता है वह कभी भी मानवताके विकासकी ऐतिहासिक प्रवाह चेतनाको भुठला नहीं सकता।

आधुनिक दृष्टिकोण इसीलिए परम्परा-द्रोहका पर्याय नहीं है। आधुनिकता आजकी परिस्थितिमें हमारी दृष्टिका वह परिप्रेक्ष्य है जो हम अपनी साम्प्रत भौतिक सीमामें अतीत और भविष्य दोनोंको अधिकसे अधिक अनुभवगम्य बनानेमें सहायक हो। आधुनिकता एक प्रबल प्रश्न चिह्न है जो हमारे हर मनुष्यको मानव-विकासके चेतना-प्रवाहसे संयुक्त होनेका संकेत करता है। आधुनिक व्यक्ति वह है जो वैज्ञानिक रीतिसे (यानी किसी वस्तुको सही या गलत तबतक नहीं माना जाये जबतक वह ऐसा प्रमाणित न हो जाये) जीवनमें विघटित होते परिवर्तित होते और निर्मित होते मूल्योंको समझ सके और उन्हें परिभाषित कर सके। हम आधुनिकताके नामपर हानिकर विदेशी मालके आयातकी आवश्यकता नहीं है। उस बुद्धि और प्रमाणकी तुलापर सही उतरनेवाले तत्त्वोंको एक ऐतिहासिक सार्थक प्रवाह-चेतनामें जोड़ते हुए सम्पूर्ण वैश्विक मानवताकी उपलब्धिके प्रकाशमें व्यक्ति और समाजको अपना सर्वोत्तम देते हुए जीवनको सार्थकता प्रदान करनेकी चेष्टा ही आधुनिकता है और इस प्रकारके विश्व और व्यक्तिके सन्तुलित सम्बन्ध-बोधसे प्रस्फुटित दृष्टिकोण को ही हम आधुनिक या नया मानना चाहिए।

मैंने सर्वत्र इसी दृष्टिकोणसे ही प्राचीन और नवीन मनुष्य और समाज भूत और भविष्य व्यष्टि और समष्टि को देखा है ऐसा दावा करना शायद

ठीक नहीं है, किन्तु मेरा यह नैरन्तरिक प्रयास अवश्य रहा है कि मैं अपनी सीमित बुद्धिके प्रभावको इतना पारदर्शी और नियन्त्रित (Conditioned) तो अवश्य बना सकूँ कि वह मेरी मान्यताके पूर्णतः नहीं तो काफी अनुकूल अवश्य हो सके। इसी कारण अतीतके अन्तर्पटमें मैंने कूटस्थ परम्परा मुक्त रूढ़ियों रस्म (Rituals) अन्धविश्वास और टोने-टोटके (Taboos and totems) की नहीं मान्यताके उन स्पन्दनशील जीवित ज्वलन्त मर्मबिन्दुओंके अंकनका प्रयत्न किया है, जो आज भी राशिभूत ध्वंसावशेषोंके मलबेके नीचे राखमें चिनगारीकी तरह छिपे पड़े हुए हैं। सम्पूर्ण मुमूर्षु कर्मकाण्डको चुनौती देते हुए शंकरकी आत्माका दर्द समस्त धर्म-नीतिकारोंके अन्यायको ललकारती हुई तारामें अन्तर्‌की मातृ-पीड़ा मानवताके अन्तरमें छिपी मानवताको नवीन सत्यके पाञ्चजन्यसे उत्प्रेरित करते कृष्णका कर्म-कौशल तथा अपने पूरे जीवनको निःस्वार्थ भावसे देव-देवताके चरणोंमें सौंपकर भी उपेक्षिता रही राधाकी आँखोंकी घनीभूत उदासी ये सभी हमारी चिन्ताधाराके अविस्मरणीय मोड़ोंकी सूचना देते हैं। ये सभी व्यक्ति सांस्कृतिक मूल्योंके शिखर हैं। किन्तु व्यक्तियोंसे इतने महत्त्वपूर्ण न विचारधाराएँ और साधनाएँ नहीं होतीं जिनकी कसौटी भट्ठीमें बेडौल धातु-खण्डोंमें पात-विग्रहकार शिव-सुन्दरकी सुडौल मूर्तियों-का निर्माण करती हैं। सम्पूर्ण विश्वमें प्रचलित पितृदेव मातृ-शक्ति पूजाका मनोवैज्ञानिक इतिहास हमें नये सिरेसे सोचनेके लिए विवश करता है कि क्या आजकी अशान्त संघर्षपूर्ण परिस्थितियोंका मूल कारण यह नहीं है कि हमने पुरुष बुद्धि-वृत्तिको अनावश्यक प्रधानता दे रखी है? नारीकी बुद्धि और उसकी मन शक्तिकी अनन्त सम्भावनाओंकी ओरसे हमने आँखें फेर ली हैं। आज हम नारी-समष्टि (Feminine Archetype) की वस्तुगत विश्लेषण और उसकी अपार शक्तियोंसे परिचित होनेकी आवश्यकता है। नारी-पूजाका भारतमें एक विशिष्ट स्थान रहा है। किन्तु यह साधना सर्वथा सन्तुलित धरातलपर शिवत्वकी बनकर ही नहीं रही है बल्कि

ग्रामकी मूक-मूर्छनामें खोकर महत् साहसमें पथभ्रष्ट भी हुई है किन्तु मनचिकारी व्यक्तियोंके कार्योंको ही दृष्टिमें रखकर सम्पूर्ण उसको ऐसा कहना उचित नहीं है। भौतिक और नैतिक मूल्योंकी विवेचना 'मोहि मम पवन न संचरै' में मिलेगी। 'देवी मेरी प्राणवल्लभा' कहनेवाला तान्त्रिक सत्यं शिवं सुन्दरके एकत्र समन्वितरूपको अपनी वल्लभा मानकर जिस एकान्त समर्पण और अनन्य रागात्मिकताका परिचय देता है वह समूचे स्थूल विश्वको स्पन्दनशील विस्तारमें बदल देती है। यही इस साधनाका रहस्य था। इसी उन्मादिनी अचिन्त्य स्थितिको भाषामें बांधनेका यत्किंचित् प्रयत्न उस निबन्धमें किया गया है। इसमें भावावेश दिखायी पड़ेगा किन्तु यह तो स्वाभाविक ही है। अन्धविश्वास और रूढ़ियोंके पेटमें कभी कभी अद्भुत सत्य छिपे रहते हैं। इस परीकी कथाओंमें शायद आजका बुद्धिवादी कम विश्वास करेगा किन्तु संसारके प्रत्येक प्राचीन जातिमें प्रचलित ये कहानियाँ क्या सिर्फ हमारे मानस-पटलपर कल्पनाकी उड़ती छायाएँ ही हैं? नहीं इनके भीतर हमारी प्रारम्भिक सामाजिक स्थितिका संस्कृतियोंके अन्तरावलम्बन और मिश्रणका विस्मयकारी इतिहास छिपा है। 'पशु-प्रेम मानुष-प्यार' इसी इतिहासकी पुनर्निर्मिति है। प्रेमके अनन्त रूप हैं किन्तु भाई-बहनके उत्सर्ग-मूलक प्रेमका कोई जवाब नहीं। इस अद्वितीय राग-भावनाके विकासकी कथा 'तीन वेर एक क्षितिज' में पढ़िए।

यहाँ यह शंका उठायी जा सकती है कि क्या प्राचीन सांस्कृतिक वस्तु-तत्त्वका विश्लेषण करते समय आध्यात्मिक पचड़ेमें पड़ना आवश्यक है। अध्यात्म शब्द कुछ इतना रूढ़ हो गया है कि हम अचानक इससे पौराणिकताकी गन्ध आने लगती है। नवीनताका आग्रह भी इस शब्दके प्रति हमें आक्रोशसे भर देता है। किन्तु इस तरहकी स्थिति औरोंके लिए कितनी भी स्पृहणीय हो साहित्यकारके लिए तो कभी भी वांछनीय नहीं क्योंकि उसकी रचना-प्रक्रियाका बहुत बड़ा अंश आध्यात्मिक नहीं तो और क्या है। स्थूल भौतिक पदार्थों तक तो आजका विज्ञान भी सीमित

नहीं रह गया है। उसकी उपलब्धियाँ निरन्तर सृष्टिके बाह्य कलेवरको भेदकर गहराईमें सोयी शक्तियोंके अन्वेषणसे और उनके मानवीकरणसे भास्वर होती जा रही हैं। कौन जाने एक दिन आध्यात्मिक वस्तुके सत्य जो हमें आज नितान्त काल्पनिक और अन्ध श्रद्धाके प्रतीक जैसे मालूम हो रहे हैं वैज्ञानिक प्रक्रियाके निरन्तर अकाट्य प्रमाण बन बैठें। और फिर साहित्यकार तो मनोजगत्‌का प्राणी होनेके कारण सिर्फ स्थूल इन्द्रिय ग्राह्य तथ्यको ही सत्य नहीं मानता उसके सत्य वैयक्तिक अनुभवसे भी कम प्रमाणित नहीं हुआ करते। अस्तु।

'अकेले बोलें' पुस्तकी कृतियाँ विविध स्थानोंके केन्द्रोंमें सीमित होती हुई भी कई ऐतिहासिक आधुनिक सन्दर्भोंकी महत्त्वधाराके संयोजित करने का प्रयत्न करती हैं। काशी जयपुर नागर भौगोलिक इकाइयाँ भर नहीं हैं। इन यात्रा-स्केचोंमें अतीत और भविष्यकी परस्पर-विरोधी दिशाओंमें सम्यक्‌समान सम्भावनाओंका एकत्र समन्वय-संयोजन भी जिसकी धरोहर जो इन्हें केवल ऐतिहासिक अभिव्यक्तिका सत्य साक्ष्य ही नहीं बनाता बल्कि जीवित व्यक्तित्व प्रदान करता है। और 'यमलोक' तो मानो मृत्युके काले पटलपर मनुष्यजातिकी पूर्वापर, मानव-समाप्त अस्ति-नास्ति की विकास-यात्राका कच्चा चिट्ठा ही खोले दिये दे रहा है।

तीसरा खण्ड साहित्यिक मूर्धन्य चिन्ता-शिखरोंके व्यक्तित्वका अंकन है। प्रेमचन्दकी जन्मशताब्दीपर लिखे 'कलम मजदूरका कलाकार' शीर्षक लेखको छोड़कर अन्य निबन्ध सम्मानित साहित्यकारोंकी अचानक मृत्युकी खबर सुनकर श्रद्धांजलिके रूपमें लिखे गये। पिछले तीन-चार वर्षोंमें एकके बाद एक स्तम्भ टूटते रहे जैसे नियतिकी बिजली बार-बार गिरकर आकाशमें टूट टूटकर कला-मन्दिरकी इन अनुपम मूर्तियोंको तोड़ती रही। और मेरा यह दुर्भाग्य था कि मूर्तियाँ वे ही टूटीं जो मेरे अन्तर्मनमें आस्था और श्रद्धाके पीठपर आसीन थीं। लोग कह सकते हैं कि आपको और व्यक्तिवादी अहंपूर्ण दर्पणको व्यक्तिपूजामें ही आस्था क्यों है?

मैं खुद भी इस प्रश्नपर अपने भीतरको कुरेदता रहा हूँ। इनमें कुछ ऐसा जरूर होगा जो मेरे रक्त-मांसके शरीरके भीतर स्पन्दित चेतनासे सायुज्य पा जाता होगा। शायद मेरे इन उद्गारोंमें इसका रहस्य भी मिल जाये। न भी मिले तो कोई हर्ज नहीं। किन्तु एक चीज आप अवश्य खोजेंगे कि इन व्यक्तियोंके निर्माणमें आधुनिकता प्राचीनता प्रगति और परम्परा व्यक्ति और समाज तथा धर्म और आस्थाका ऐसा अद्भुत समन्वय कहाँसे आया? तब आपको ऐतिहासिक प्रवाह-चेतनाकी विद्युत् शक्तिकी प्रक्रिया का व्यावहारिक बोध हो जायेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

निबन्ध चिन्तनकी रचनाएँ धारावाहिक रूपसे जून १९५८से प्रकाशित होना आरम्भ हुई थी। उद्देश्य था समसामयिक हिन्दी-गद्यलेखनकी समस्याओं पर सहचिन्तन। एक स्नेही बन्धुके सौहार्द और आग्रहपर यह काम उठाया था। पर बादमें इसे स्थगित कर देना पड़ा कुछ तो इसलिए कि ये अपेक्षितसे अधिक 'सीरियस' हो गयीं और कुछ इसलिए कि अनेक मित्रों और बन्धुओं को इससे परेशानी होने लगी। चूँकि इन निबन्धोंके सिलसिलेमें इनकी रचनाका कुछ बाह्य उपचार भी व्यक्त हुआ है इसलिए यहीं यह भी बता दूँ कि इस संग्रहके अनेक निबन्धोंके पीछे दो बन्धुओंके आग्रहकी प्रेरणा भी रही है। इनमें-से एक बन्धु मुझसे असन्तुष्ट इसलिए हुए कि मैं उनकी सम्भावनाओंके अनुरूप न उतरा मानो मैं शिल्पमें उनके आदर्शको न अपना सका। दूसरे बन्धुकी आध्यात्मिकता मुझे भारी लगी। बहरहाल यह सब होते हुए भी मैं सबका स्नेह-भाजन बना रहा और इसके लिए मैं सभी का आभारी हूँ।

शिल्पकी बात आयी इसलिए कुछ शब्द इन रचनाओंके शिल्पपर भी निवेदित हैं। अभ्यासलीन आलोचनाके ठेकेदार मेरे सहकर्मी अवश्य ही असन्तुष्ट होंगे कि इनमें कहानी गद्य-काव्य स्केच व्यक्ति-व्यंजक निबन्ध संस्मरण तथा यात्रा-वर्णनोंमें से किसीकी भी उपयुक्त पद्धतिका कहीं पालन नहीं किया गया है। यहाँ वहाँ इनमें कहीं कथोपकथन है कहीं

आन्तरिक एकालाप (इन्टीरियर मोनोलॉग) कहीं सुगुप्त चेतना-प्रवाह (स्ट्रीम आफ कान्शसनेस) कहीं स्मृति पुनरावर्तन (मेमरी फ्लैश-बैक) तो कहीं सांस्कृतिक सन्दर्भपूर्णता और कहीं ऐतिहासिक सन्दर्भग्नता (हिस्टॉरिकल इन्फरेन्सिङ्) कहीं नाटकीय पद्धतिका अनुसरण है तो कहीं मुक्त रंगमंचीय विधान। आखिर यह सब क्या है? यह मेरी विवशता है। लगती है कि मैं शैलीको शरीरका चमड़ा अथवा कोट कुछ भी नहीं मान पाता। शायद शापेनहावरका यह कथन मेरी शैलीके आदर्शका संकेत है कि 'शैली और कुछ नहीं मन-बुद्धि अथवा सूक्ष्म मस्तिष्ककी विचार मनमानोंकी बाह्य व्याकृति मात्र है। The style is the physiognomy of the mind और मेरे निकट उसकी मानना अभिव्यक्तिका विस्मरन है एक आध्यात्मिक प्रक्रिया। और मैं यहाँ सहायताके लिए मैथ्यू आर्नल्डकी ये पंक्तियाँ उद्धृत करूँगा

'Style is a peculiar recasting and heightening under a certain condition of spiritual excitement, of what a man has to say in such a way as to add dignity and distinction to it. — [On the studies of Celtic Literature]

यहाँ आध्यात्मिकताका अर्थ पौराणिक आध्यात्मिकता नहीं है। यह भ्रम कदापि नहीं होना चाहिए कि आध्यात्मिक आवेश पूजा-पाठ या समाधिसे किसी भी प्रकार सम्बन्धित है। आन्तरिक तन्मयता और वर्ण्य वस्तुमें केन्द्रकी ऐकान्तिक एकाग्रता ही को यह विशेषण दिया गया है। मेरे निकट उभरती हुई वस्तु और उसकी ऐतिहासिक परिव्याप्तिको सीमित सृजन-शक्तिमें समाहित करनेका प्रयत्न रहा है और यह अनुभूति जिस प्रकारकी विधामें सहज ढंगसे व्यक्त हो सके उसीमें उसे ढालनेका प्रयत्न किया गया है। ये रचनाएँ बने-बँधाये साँचोंमें ठीकसे बैठती हैं या नहीं यह प्रश्न मेरे निकट कोई खास महत्त्व नहीं रखता। शैलीके

वैचारिकता है, भावात्मकता है, आवेश है, विश्लेषण और व्याख्या भी— ये सभी 'वर्ण्य वस्तु' के स्वभावके अनुरूप अपना रूप स्वयं ग्रहण करते रहे हैं और मैंने विषय विभाजनकी तरह इन्हें कभी भी बाधित करनेका प्रयत्न नहीं किया है। मेरा कथ्य अपनी पूरी क्षमताके साथ इनमें अभिव्यक्त हो सका है या नहीं इसपर प्रबुद्ध पाठक स्वयं ही विचार करें।

इस निवेदनके साथ ही मैं आपको शिखरोंका यह सेतु समर्पित करता हूँ। मानवताके विश्वासमय आस्थापूर्ण पवित्र व्यक्तियों और विचार धाराओं घटनाओं और स्थानोंके शिखरोंपर अंकित है—मैंने इन्हें अपनी सीमित शक्तिसे देखनेका प्रयत्न किया है, आप भी इन्हें देखते आ रहे हैं अपने ढंगसे इस बार मेरे साथ इस यात्रापर चलें यही मेरी प्रार्थना है। जीवन-यात्रामें कभी थक चलें तो इन शिखरोंका एक क्षण रुककर सहारा ले लीजिएगा—रास्तेके झरनोंका शीतल जल आपकी थकान को हरे—आपका पथ मंगलमय हो—। बस।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य॥

काशी
क्रिसमस १९६१

—शिवप्रसादसिंह

अनुक्रम

अतीतके तोरण

- मण्डन मिश्रकी डायरी
- दक्षिणेश्वरने कहा
- ताराका पाप
- देवी : मेरी प्राणवल्लभा
- पशु-प्रेम मानुष-द्वारे
- टेरा-कोटाका साक्ष्य
- जेहि मन पवन न संचरै
- तीन घरे : एक क्षितिज
- चार चरण

मण्डन मिश्रकी डायरी

बीस दिन बीत चुके थे। महाकालके विराट् विहगके कृष्ण-शुभ्र पंखोंके बीस क्षणिक कम्पन। समयकी अनन्त धारामें इस क्षुद्र वीचि विलासका मूल्य भी क्या! किन्तु बीसवें दिनकी यह काली रात्रि जाने क्यों मेरे लिए पर्वतकी तरह दुर्गम प्रतीत होने लगी। जानता हूँ कि प्रत्यूष होनेमें देर नहीं है। एक पहर बाद ही उषाकी नील-लोहित आभा पूर्वीय क्षितिज-छोरको छूने लगेगी। मण्डन मिश्रके द्वारपर पिंजर-बद्ध सारिकाएँ अपने अभ्यस्त व्योम 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं'का पाठ आरम्भ कर देंगी। माहिष्मतीकी धवल अट्टालिकाओंपर दिनकरकी तारसवर्णी किरणें असंख्य नर-नारियोंको प्रभातीका स्वर सुनायेंगी। अपनी उल्लास भरी वाणीमें वे कहेंगी 'माहिष्मतीके विद्वज्जन पण्डित नागर और देखियो! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि दक्षिणापथके संन्यासी शंकर और सम्पूर्ण विद्वन्मण्डलीके अलंकरण आचार्य मण्डनके शास्त्रार्थका यह इक्कीसवाँ दिन है? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सम्पूर्ण भारत देशमें आज तक न तो इस प्रकारका विचित्र शास्त्रार्थ कभी हुआ और न कभी होगा? क्या तुम नहीं जानते कि इस शास्त्रार्थमें निर्णायकके आसनपर आचार्य मण्डन मिश्रकी विदुषी पत्नी सरस्वतीरूपा देवी भारती स्वयं विराजमान हैं?

और मैं जब एक बार इन बीस दिनोंके बारेमें सोचता हूँ तो जाने कैसी विचित्र कैसी आशंकाओंसे हृदय भर उठता है। उस दिन मेरे पिता का श्राद्ध था। ठीक प्रत्यूष वेलामें किसीने पुकारा था। अर्भका लड़की थी। सारिकाएँ चौंककर पंख मारने लगी थीं। अयाचित मध्यान्हिकके

जोंकेकी तरह ब्रह्मचारी आँखोंमें घुस आया था। आश्रममें संन्यासीका आना शास्त्र-विरुद्ध है न, यह मेरे संस्कारी मनमें प्रश्न करनेपर भी क्रोध उमड़ ही आया था। मैंने उसकी ओर तीक्ष्ण नेत्रोंसे देखते हुए कहा 'संयम और अनुशासन क्या ब्रह्मचारीके लिए त्याज्य हो चुके हैं?'

उसने कुछ कहा नहीं। दुबला-पतला शरीर, कापाय वेश—लगा मेरे आँगनके कोनेमें पुष्पित कर्णिकार खड़ा है। उसके चेहरेपर न क्रोध था न आक्रोश।

'तो क्या धार्मिक यात्राके इस पुण्य पर्वपर ब्रह्मचारी आचार्य मन्मथ मिश्रके द्वारसे खाली हाथ लौट जानेके लिए आमन्त्रित हुआ है?'

संस्कारी स्वरके आमन्त्रणको मन्मथ मिश्रने कभी अस्वीकार नहीं किया है। मैंने पास जाकर पूछा 'ब्रह्मचारी अतिथिदेवको क्या आज्ञा है, क्या चाहिए?'

'सान्निध्य' उसने धीरेसे कहा।

बहुत संयमपर भी मेरे अधरोंपर हँसी फूट पड़ी थी। मैंने ब्रह्मचारीकी निर्मल मानस झीलकी तरह निर्दोष आँखोंमें झाँककर अपना स्नेह विगलित अपनत्व व्यक्त करते हुए कहा था 'मन्मथ मिश्रके द्वारसे धर्मार्थ-कामी कभी रिक्तहस्त नहीं लौटा है, आप मेरी अतिथिशालामें पंच-वाणिकी तरह पुष्पित होकर विश्राम करें। कल सूर्यकी पहली किरणके साथ ही आपकी मनोकामना पूरी करनेके लिए मैं तत्पर रहूँगा।'

'कृतार्थ हुआ' ब्रह्मचारीके पतले अधरोंपर भी एक क्षीण रेखा खिंची और मिटी भी और रात्रिके अवसानपर आँखोंमें अवतरित प्रथम ज्योति-रेखाकी तरह। जिज्ञासा और विश्वासकी इस रेखाको मन्मथ मिश्रने हर्षित आदरसे देखा है चाहे वह अपने प्रतिद्वन्द्वीके चेहरेपर ही क्यों न खिली हो। ब्रह्मचारी चला गया था—धर्मार्थ-कामी शिष्योंके शिविर तकको आगारुद्धने बंद करनेवाली मन्मथ मिश्रकी तर्क-प्रखर बुद्धिको आलोकित करके।

'संसार मिथ्या है। ब्रह्म एकमेव सत्य है। कर्म जीवको मृत्यु और जन्मके बन्धनमें बाँधते हैं। ज्ञान इस बन्धनका उच्छेद करता है' ब्रह्मचारीने गम्भीर शब्दोंमें कहा 'आचार्य, यही मेरी स्थापना है। मैं इसकी पुष्टिके लिए सब प्रकारसे तत्पर हूँ। देवी भारती स्वयं निर्णायक हैं।'

किंचित् मुसकराकर भारतीने ब्रह्मचारीकी ओर देखा। पारिभाषिक रंग ऊपरसे कितना भी श्वेत हो, स्पर्शसे अँगुलियाँ श्याम हो जाती हैं, इसे कौन नहीं जानता। शंकरके चेहरेपर हल्की अरुणिमा दौड़ गयी थी। ब्रह्मचारी कह रहा था 'आचार्य, यदि मैं इस शास्त्रार्थमें पराजित हुआ तो काषाय वेश छोड़कर गृहस्थका श्वेत वस्त्र धारण कर लूँगा और यदि आप पराजित हुए तो आपको इन श्वेत वस्त्रोंके स्थानपर काषाय धारण करना होगा।'

शास्त्रार्थमें इतनी विश्वास-भरी वाणी, इतनी अडिग उपपत्ति और प्रतिद्वन्द्वीको ऐसी कठोर ललकारका शायद ही कभी सामना करना पड़ा हो।

'संन्यासी' उत्तरापथके सम्पूर्ण शास्त्रविज्ञ आचार्योंको संत्रस्त करनेवाली वाणीमें अचानक मन्द्र मेघ-ध्वनिकी गरिमा समाहित हो गयी थी 'जगत् सत्य है। वेद स्वतः प्रामाण्य है। जीव और ब्रह्म कभी एक नहीं हो सकते। जीवके कर्म स्वाधीन हैं। वेदविहित कर्म ही उसे सुख प्रदान कर सकते हैं—यह मेरी स्थापना है। यदि मैं पराजित हुआ तो संन्यासी-का काषाय पहननेके लिए तैयार हूँ और यदि आप पराजित हुए तो महर्षि जैमिनिकी कर्म-मीमांसापर कुठाराघात करनेवाले इस मतवादके उच्छेदनके लिए आप गृहस्थ होकर मेरी शिष्यता स्वीकार करेंगे।'

—और आज बीस दिन बीत गये। मैंने कर्म-मीमांसाकी महत्ताको प्रमाणित करनेके लिए कुछ भी उठा न रखा। इतिहास, पुराण, स्मृति, ब्राह्मण—कोई भी ऐसा ग्रन्थ न छूटा जिसके निगूढ़ अन्तरालमें जाकर मैंने अपनी मान्यताकी पुष्टिके लिए प्रमाणोंका सन्धान न किया। मण्डन मिश्रकी

अपराजिता बुद्धि पतिपरायणा नारीकी तरह निरन्तर एक पैरपर खड़ी रही। किन्तु आह, आज ब्रह्मचारीकी आँखोंमें कौन-सी ज्योति है जो कभी धूमिल नहीं होती! उसके अधरोंपर मन्दार पुष्पकी तरह यह कैसी मुसकराहट है जो कभी लुप्त नहीं होती! दुर्धर्ष तीव्र गन्धवाली वाडवाग्निकी तरह तत्त्ववादियोंको लुप्त करनेवाले स्रोतोंको जिस शास्त्रागारने युद्धमें ठेलनेके लिए विवश किया था वह आज एक मानुषी शास्त्र-पयस्विनीकी तरह कभी प्रतिहत-गति होनेका नाम नहीं लेती। ब्रह्मचारीकी तर्कधारा अबाध है आज शास्त्रार्थका अन्तिम दिन है। आज निर्णय होकर ही रहेगा। 'भगवन्' मेरी अन्तरात्मा कहती है तुम शास्त्रके शुद्ध पाषाण-खण्डोंसे ब्रह्मचारीकी इस धाराप्रवाहको रोक नहीं सकते। आज तुम्हें अपनी सम्पूर्ण धाराको इस जल-वेगके सम्मुख टिका देना होगा।

मैं उसके लिए भी तत्पर हूँ यदि वैदिकीय मान्यताओंकी प्रतिष्ठाके लिए मैं कुछ भी उठा न रखूँगा।

मध्याह्न हो चला था। शास्त्रार्थका यह अन्तिम दिन कितना उग्र था सूर्य कितना भास्वर था दिशाएँ कितनी शान्त। पिंजरस्थ सारिकाएँ निःशब्द मौन होके जैसे इस परम परिस्थितिका अनुभव कर रही थीं।

आचार्य शंकरने कहा आप मेरे प्रत्येक तर्कके उत्तरमें यही कह रहे हैं कि श्रुतिसे इसकी पुष्टि नहीं होती। यद्यपि मैं यह मानता हूँ श्रुतियाँ स्वतःप्रमाण मान्य हैं। केवल उनके समझनेमें बुद्धि भेद है। और यह मेरा आपसे अन्तिम प्रश्न है यदि भारतीका निर्णय आपके पक्षमें हुआ तो अपनी पराजय स्वीकार करनेको तैयार हूँ। मैं आपसे उत्तरकी याचना करता हूँ।

संन्यासी पूछें मैंने कहा।

आप वयोवृद्ध विद्वान् भरी सभामें अपना आग्रह प्रकट न करें किन्तु

सैकड़ों श्रुति-स्मृति एक साथ कहें कि अग्नि अमुष्ण है तो इसे प्रमाण माना जायेगा ?

मेरी आँखोंके सामने जैसे सहस्रों सूर्य एक साथ प्रज्वलित हो गये। धर्म और प्राकृतिक सत्यके सम्बन्धमें यह एक अभूतपूर्व तर्क था। आज मुझे अपनी सारी मान्यताएँ अपना आधार छोड़ती दिखी थीं। यदि कहूँ 'हाँ' तो 'जगत् सत्य' का विरोध होता है, कहूँ 'ना' तो वेद 'परम प्रमाण' सिद्ध होते हैं। मौनका एक विचित्र दीन भरा भाव मेरे अधरोंको जकड़कर बैठ गया। मेरे वक्षकी वैजयन्ती माला मेरे अन्तर्दाहसे उद्भूत श्वाससे सूख गयी।

भारती आसनसे उठी। वह निर्णायक ही नहीं आतिथेया भी थी। बोली — संन्यासी आप दोनों भिक्षा ग्रहण करें।

नियम तुड़ा दिया गया था। मेरी पत्नीने प्रति दिनकी तरह 'संन्यासी आप भिक्षा और आचार्य आप भोजन ग्रहण करें' नहीं कहा। नवयुवक ब्रह्मचारीके सामने माथा झुकाकर मैंने कहा — स्वामी मैं हारा किन्तु अब भी एक शंका मनमें है। आप कह दें कि मेरी हार मण्डनकी व्यक्तिगत हार थी। महर्षि जैमिनिकी मान्यताएँ असत्य नहीं हैं।

आचार्य शंकरने बड़े ममत्वसे कहा — ऋषियोंकी मान्यताएँ कभी असत्य नहीं हो सकतीं। कर्म मन-शुद्धिके साधन हैं। उन्हें साध्य माननेसे हानि होती है। कर्मसे शुद्ध चित्तमें ही तो ज्ञानका उदय होता है। ऋषिने कर्मको इसी चित्तशुद्धिके लिए आवश्यक बताया था उसके बाह्य आडम्बर में फँसनेके लिए नहीं।

दूसरे दिन आचार्य शंकर जानेवाले थे किन्तु उन्हें भारतीने रोक लिया। द्वारपर उमड़ते हुए जन-समूहको देखकर मैंने समझा कि वे आचार्य-को विदा करने आये हैं पर उनकी आँखें एक विचित्र जिज्ञासा बरसा रही थीं। तो क्या जो मैंने सुना वह सत्य है? हाँ सत्य है।

मण्डन मिश्रकी डायरी

भारती कह रही थी 'संन्यासी, आपसे मण्डन मिश्र पराजित हुए— किन्तु यह असत्य है।' सारी सभा आश्चर्यसे चक रह गयी। 'आपने मण्डन मिश्रके अर्धांगको ही पराजित किया है, मुझे पराजित करनेके बाद ही वे आपके शिष्य हो सकते हैं।'

'देवी, मैं नारीसे शास्त्रार्थ नहीं करता' शंकरने कहा।

भारती एक कुटिल हँसीसे अधरोंको तिर्यक करके बोली 'यह मैं जानती हूँ। आपने अपने शास्त्रार्थमें एक जगह कहा था कि नारी मदिरा है। आचार्य, क्या आपका सर्व-व्यापी ब्रह्म नारीमें विद्यमान नहीं है? यदि है तो आप एक समान प्रतिद्वन्द्वीकी शास्त्रार्थ-याचनाको स्वीकार करें, और यदि नहीं है तो अपनी मिथ्या मान्यतासे विरत हों।'

शंकरने सिर झुका लिया था। वे शास्त्रार्थ करनेके लिए विवश थे।

पूरे पन्द्रह दिन बीत गये हैं। और आजकी यह भीगी रजनी मुझे अपने शास्त्रार्थकी उस अन्तिम रात्रिकी याद दिला रही है। माहिष्मतीमें इस शास्त्रार्थने अद्भुत कुतूहलकी सृष्टि कर दी है। दूर-दूरसे लोग एक पहर रात्रि शेष रहते ही किसी आकर्षणमें खिंचे चले आ रहे हैं।

शास्त्रार्थके लिए प्रतिद्वन्द्वी आमने-सामने बैठ गये।

भारती बोली 'आचार्य, आपको तर्क और युक्तिसे पार पाना कठिन है। मैं आपकी शिष्या बननेको तैयार हूँ। केवल एक प्रश्न है और अन्तिम।'

'देवी, पूछें।'

भारतीके अधरोंपर वही चिरपरिचित कुटिल हँसी छा गयी। लास्य-किरण-सी कौंध उठनेवाली उस हँसीसे मैं परिचित हूँ।

वह बोली 'आचार्य, कामकी कितनी कलाएँ हैं? उनकी विभिन्न स्थितियोंका परिचय दीजिए। कृष्ण और शुक्ल पक्षमें इन स्थितियोंमें कोई अन्तर होता है? यदि हाँ तो युवती और पुरुषका अन्तर इनकी पृथक्

प्रतिक्रियाएँ बताइए ?

भारती सभा स्तब्ध । ब्रह्मचारीका चेहरा लज्जासे आरक्त हो गया । उन्होंने गरदन झुका ली । कुछ देर मौन बैठे रहे । आँखें अजीब करुणासे भर आयीं । वे धीरे-धीरे बोले 'देवी मैंने पराजय स्वीकार कर ली । मेरा ज्ञान अधूरा है ।' पुष्पधाराकी तरह प्रज्वलित आँखें भूमिमें विगलित हो गयी थी ।

भारती फिर मुसकरायी । वह आचार्यके पास घुटने टेककर बैठ गयी । 'आचार्य आपकी हारमें ही आपकी जीत है । आपने इस प्रश्नका उत्तर न देकर अपने संन्यासकी मर्यादाको अक्षुण्ण रखा ।'

बहुत दिन बीत गये । मैं अब मण्डन मिश्र न रहा । श्वेत वस्त्रोंके स्थानपर कषाय पहनकर सुरेश्वराचार्य हो गया हूँ । संन्यासी । सांसारिक प्रपंचसे अलग । किन्तु मनको शान्ति नहीं । बार-बार कोई पूछता है, क्या जैमिनिके सिद्धान्त इतने निराधार हैं ?

'आचार्य' पास आकर एक शिष्य बोला 'सुना आपने ?'

'क्या हुआ ?' मैंने उसे आश्वस्त किया । वह धीरे-धीरे बोला 'आचार्य गुरु शंकराचार्यने तो बड़ा अनन्य काम किया ।' डरते-डरते कहा उसने 'आचार्यकी माता-श्रीका देहान्त हो गया । ब्राह्मणोंने उन्हें धर्म-द्रोही कहकर उनकी अन्त्येष्टिमें सम्मिलित होनेसे इन्कार कर दिया । अन्तमें शंकरने अपनी माँके मृत-शरीरके तीन टुकड़े कर दिये । और इन टुकड़ोंको बारी-बारीसे श्मशानमें ले जाकर दाह-कर्म किया ।'

लड़का चुप हो गया था । पर मनमें मोहकी कालिमा धुल गयी थी । शंकरने अपनी मृत माँके शवके टुकड़े नहीं किये थे उन्होंने कर्म-काण्डकी सारी बर्बर समाज-विरोधी मिथ्या मीमांसाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया था ! मैं हार बहुत पहले गया था किन्तु मनमें अवरुद्ध ये शब्द तो आज ही फूटे ।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥



दक्षिणेश्वरने कहा

दक्षिणेश्वर—नवीन भारतकी अमृता धरा मानसका आकाशवाणी-केन्द्र। जाने कितने वर्षोंसे इस अपूर्व चुम्बकीय आकर्षणसे पूर्ण स्थानको देखनेकी अदम्य इच्छा हृदयको मथ रही थी। जाने कबसे अदम्य लालसाका अपवार्य धुन मेरी सारी चेतनाको पर्यावरित किये रहता था। और अब सामने दक्षिणेश्वर है तो जाने क्यों वह हलचल शान्त हो गयी है। नदीकी चंचल धारा भी स्थिर है पालें मुड़ी हैं मानो सुस्त बत्तखोंकी तरह उसकी छातीपर गतिहीन-सी पड़ी हैं। उत्तरकी वाटिकाके हरे पुष्प-पटलपर भी चमचमाते कंगूरोंसे मण्डित काली मन्दिर श्री रामकृष्णकी जागृत आराध्याका विशाल मन्दिर नव दुर्गाकी साकार सम्मिलित प्रतिमाका पुंजीभूत घन विग्रह।

सामनेके नटमण्डपके खम्भेसे पीठ टिकाये एक लमहेके लिए बैठा हूँ तो जाने कितनी मिली-जुली आवाजें महकते संगीतके अछूते स्वर बना उस नावकी तरह अपने अन्तर्मनमें समेट लेते हैं। मन बढ़कर इस अतीत स्वर-संगममें डूब जाता है।

इसी नटमण्डपके पास एक दिन वह व्यक्ति भी खड़ा था जिसने सत्य की पुकारको प्रश्रय दिया था। आतुरसी कहा था बोला गया था। रोते हुए रामकृष्णके चरण हाथको अपने सिरसे हटाकर नरेन्द्रने कहा 'मेरे प्रति तुम्हारी यह आसक्ति तुम्हें अपने लक्ष्यसे नीचे गिरा देगी' और तब रोम-रोमकी तीखी आलोचना अपने आन्तरिक स्नेहकी विडम्बना मन के अटूट वात्सल्यकी निष्ठासे परेशान होकर रामकृष्णने कहा 'बेवकूफ

शिरतीय सेतु

मैं अब अधिक न सुन सकूँगा। माँ कहती है कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ क्योंकि मैं तुममें ईश्वर देखता हूँ और अब तुममें मैं ईश्वर न देखूँगा उस दिनसे तुम्हारा मुँह देखना भी मुझे पसन्द न होगा।

माँकी शक्तिके सामने नरेन्द्रने घुटने टेक दिये। साधना और युद्ध प्रसूत चमत्कार मानमेधाका तक श्रद्धामें डूब गया। ब्रह्म-समाजमें दीक्षित विद्रोह कालीकी मूर्तिके सामने प्रणत-शिर बना रह गया। व्यवसायात्मिका बुद्धि महाभावमें निमग्न हो गयी।

किन्तु, विवेकानन्दने यदि घुटने टेक दिये तो टेक दिये उन्हें पूर्वजन्म-का योगी ज्यादा प्यारा था जो रामकृष्णकी प्रार्थनापर उनके मिशन का देश-देशान्तरमें प्रचार करनेके लिए नरेन्द्रके रूपमें अवतरित हुआ था और आज अस्सी वर्ष बीत चुके हैं। अस्सी वर्षमें पृथ्वीने दर्जनों बार नया आवरण धारण किया है। अस्सी वर्षोंमें मानव-बुद्धिने बीसियों मंजिलें पार की हैं बीसियों असीम उत्तम पुरानी सीमाओंको तोड़ा है नये कीर्तिमान बनाये हैं। आज मानव-बुद्धिकी वैजयन्ती सुदूर नक्षत्रोंमें फहरा रही है 'आज वह प्रकृतिकी दुर्भेद्य सीमाओंको तोड़कर अपनी सत्ताकी अवि-जेयताकी निरन्तर घोषणा कर रहा है। इसलिए, आज वह आसानीसे आध्यात्मिक चमत्कारोंके सामने घुटने टेकनेके लिए मजबूर नहीं है। आज उसके गर्वोन्नत मस्तकको झुका देना उतना आसान नहीं है।

जुगुप्सासे मुँहको विकृत करके हाइनरिख जिमर कहता है 'यह भारत है, जिसने देवीको क्रूरतम रूपमें उपस्थित किया है काली असीम-भय करा कंकालकाय नारी जो खोपड़ियोंके वेशमें निवास करती है। (Die Indische Weltmutter page 190) स्टमट पिगट इस भयंकर देवीके प्राचीनतम रूपोंका सन्धान करते हुए कहता है, 'उत्तरी सिन्ध बिलोचिस्तानकी झोब नदीकी घाटीमें प्राप्त ये छोटी मूर्तियाँ जिनके सिरपर

चमड़ा या कम्बलका मुकुट है, मुखाकार पशु-मुखक छेदके ऊपर चौड़ा ललाट है, उल्लूकी चोंचकी तरह नाक और बन्द सिले मुँह हैं। निश्चय ही उस देवीके स्वरूप हैं जो मृतकोंकी संरक्षिका कही जाती है जिसके लिए कब्रोंमें लाशके साथ खाने भी रखे जाते थे। (प्रीहिस्टॉरिक इण्डिया पृ० १२६–२७) मृतकोंकी संरक्षिका देवीके आधुनिक रूपमें भारतमें दुर्गाकी पूजा होती है, जो हाइनरिख जिमरके अनुसार हिमालयकी कन्या है विनाशिका है, जिन्हें पार्वती भी कहते हैं। एक अँग्रेज जिसने १८७१ में इस देवीकी पूजा देखी जो लिखता है कि प्रतिदिन बीस भैंस ढाई सौ बकरे, और इतने ही सूअर मन्दिरमें काटे जाते थे। बलिवेदीके नीचेका कुण्ड ताजे खूनसे भरा रहता था और जिसमें कई बार बाल उखाड़कर इस सुखाया जाता था और वह खून-सना बाल जमीनके भीतर पैदावार बढ़ानेके लिए गाड़ दिया जाता था। कालीघाट कलकत्ताका मन्दिर प्रतिदिन होने-वाली भयंकर बलिके लिए मशहूर है। निःसन्देह कालीघाटका मन्दिर विश्वका सबसे बड़ा खूनी मन्दिर है। दुर्गा पूजाके विशेष सिर्फ तीन दिनोंके अन्दर ही करीब आठ-सौ बकरोंकी बलि होती है। चूँकि जीवन उन्होंने दिया है, इसलिए उसे मानवकी बलि भी देनी चाहिए। (जिमर पृ० १७९)

विलेपियाके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर हम आश्चर्यसे तिलमिला जाते हैं किन्तु हमें अपने हृदयको भी टटोलना चाहिए, कि क्या हममें-से बहुतों के मनमें भी यह शंका नहीं है? क्या हम अपनेसे ही बार-बार यह नहीं पूछते कि जो जगन्माता है वह पुत्रोंकी बलि कैसे लेती है!

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसमें नाराज या गुस्सा होनेकी बात नहीं है। हम शान्तिपूर्वक नारी-चेतनाके विकासका सूक्ष्म अन्वेषण करना चाहिए। जबतक हम मातृशक्तिके विकासका निष्पक्ष मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं करते हमारे मनकी इन शंकाओंका कोई समाधान नहीं मिल सकता। मैं भी इस विश्लेषणका हिमायती हूँ। आज जिनमें मातृविषय अशान्ति है कम्प

सिम्परीका सतु

है, संभव है। इसे सुलझानेमें हम असमर्थ हैं क्योंकि हमने पुरुष-चेतनाके अध्ययनमें ही अपनी सारी शक्ति नष्ट कर दी है। हमें आज नारी-चेतना-के अध्ययनकी विश्लेषणकी आवश्यकता है। विश्वव्यापी मातृपूजाका यहाँ ज्ञान हमें कदाचित् नारी-चेतनाके विश्लेषणमें सबसे अधिक सहायता पहुँचा सकता है। इसीलिए आजके मनोवैज्ञानिक मातृशक्ति-चेतना (The great mother Archetype) के अध्ययनको बहुत अधिक महत्त्व देने लगे हैं।

संसार भरमें प्रचलित मातृपूजाके विभिन्न स्वरूपों आचारों एवं पद्धतियोंको दृष्टिमें रखकर यदि हम समष्टि-नारी मूर्तिपर विचार करें तो हमें लगेगा कि नारी-पूजाके मुख्यतया दो ऐतिहासिक स्तर हैं १ भयकारी माता २ उन्नयनकारी माता।

१

प्रागैतिहासिक युगसे मातृपूजाके विभिन्न चिह्न प्रस्तरखण्डों टूटी मूर्तियों अथवा चट्टानोंपर अंकित चित्रोंके रूपमें मिलते हैं। चूँकि मनुष्य जन्म लेते ही माताकी गोदमें आता है, इसलिए उसके हृदयपर मातृ-चेतनाका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। युग-युगमें परिवार जब मातृसत्तात्मक थे तो यह प्रभाव और भी गहरा और व्यापक रूप धारण करता गया यद्यपि आज मातृसत्तात्मक युगके सही रूपको समझानेवाली वस्तुओंका अभाव है। यह पूरी सामग्री महाकालके पेटमें समा चुकी है पर जो कुछ प्राप्त है, वह भी इसके परिकल्पित रूपका आभास दिखानेके लिए पर्याप्त है। पाषाण युगकी मूर्तियाँ प्रस्तर खण्डों अथवा गुफा-चित्रोंमें नारी मूर्तिकी सम्पूर्णताका बोध नहीं होता। प्रधानता प्रायः उदर तथा वक्ष-स्थलकी है। सिर है ही नहीं भुजाएँ सिर्फ संकेतोंसे व्यक्त की गयी हैं। उभरे हुए उदरभागको देखकर मनोवैज्ञानिकोंने अनुमान लगाया कि यह गर्भ अथवा सृजन-शक्तिका सूचक है। इन मूर्तियोंको पृथ्वीसे संयुक्त दिखाया गया है मानो मातृ-शक्ति पृथ्वीसे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध थी। वास्तवमें

मूर्तियोंके लिए आसनकी खोज हुई और मनुष्यको पत्थरसे ऊँचा और नया आसन मिलता। इसी कारण पत्थरके साथ भी मातृमूर्तिकी सम्पृक्ति बढ़ने लगी। विलेन डोर्फ, मैण्टन, लेस्पुगेन आदिकी वीनस मूर्तियाँ इस आरम्भिक पूजाकी प्रतीक हैं। ग्रीक और बाल्कन प्रदेशोंकी पाषाणयुगीन मूर्तियोंसे धीरे-धीरे शारीरिक गठनके विकासका पता चलता है। इस क्रममें नग्न-मूर्तियाँ भी मिलती हैं। मिस्र, सीरिया, मेसोपोटामिया, ईरान तथा एशिया माइनरके इलाकोंमें प्राप्त नंगी मूर्तियोंमें नारी-अंगोंको उभारकर दिखाया गया है जो उसकी सृजन-शक्तिके सूचक हैं। (देख टेराकोटा प्री-सोलोनियन शासनकी मूर्तियाँ २५ ई० पूर्व आदि)

इन्हींके साथ-साथ कुछ ठिगनी मूर्तियाँ भी मिली हैं जो बहुत भयंकर और भयकारी हैं जिनमें आँखें बड़े-बड़े छेदके रूपमें दिखायी गयी हैं। ये 'मातृमूर्तियाँ' प्रायः कब्रों या शवोंके साथ मिली हैं जो इस बातकी सूचक हैं कि मातृपूजामें भयका योग होने लगा था। वह मृत्युकी देवी मानी जाने लगी थी। पूर्वा-प्रस्तरकी बनी फ्रान्सकी मिसोलिथिक मूर्तियोंमें यह भय देखा जा सकता है।

मध्यकालमें करीब-करीब सभी देशोंमें भयकारी मातृमूर्तियोंकी पूजाका विधान दिखायी पड़ता है। बाल्कन आइसिस हैथोर और कालीका रूप इनमें सबसे अधिक भयानक रूप है। इन मूर्तियोंके साथ वाहनके रूपमें सिंह, घड़ियाल, हिप्पोटेमसकी कल्पनाएँ चलती हैं। चार स्तन, कुत्ता तथा घुमरी तरहके रक्तपात उनके साथ अनेक रूपोंमें सम्बद्ध हैं। मिस्रकी देवी सेखमतका प्रतीक पशु है। यूनानके पूर्व-हेलेनिक इतिहासमें मदूषा ऐसी ही देवी है। मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि भयकारी मातृपूजाका सबल रूप सिंह, घड़ियाल, रक्त, मृत्यु आदिका विवरण प्राप्त होता है, जो इस बातका सूचक है कि मनुष्यके मनमें मातृशक्तिका भय बड़ी गहराईमें पैठा हुआ था।

इस भयका कारण क्या है? मातृसत्ताक युगमें जब पुरुष अपने जन्म

पालन और रक्षाके लिए नारी-मुखापेक्षी था तो वह शायद इतना भयभीत न था। यह भय उसके मनमें बादमें क्रमशः और भिन्न-भिन्न कारणोंसे निरन्तर बढ़ता गया। एरिक न्यूमन-जैसे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकका कहना है कि यह मानवीय चेतनाके संघर्षकी एक दर्दनाक कहानी है। चेतना पुरुष शक्ति है कमसे-कम उसका अनुभव 'पुरुष-शक्ति' के रूपमें ही समझा जाता है। मातृपूजाके विकासके विभिन्न स्तर बताते हैं कि किस प्रकार मानव-चेतना आरम्भमें मातृशक्तिपर अवलम्बित और उसके आश्रित थी जैसे वह प्रिय पुत्रके रूपमें स्नेहका आलम्बन थी और जैसे वह बादमें पुरुषके रूपमें मातृ-शक्तिके आधिपत्यसे मुक्त होनेके लिए संघर्ष करती रही। चूँकि पुरुष-चेतनाके मातृशक्ति और उसके प्रभावसे मुक्त होनेका संघर्ष हमेशा दुःखदायी होता है, इसलिए इस संघर्षमें भी भय मृत्यु बोधका प्रादुर्भाव आवश्यक था। भयकारी मातृ-शक्ति अचेतनाका प्रतीक है इसी कारण उसके साथ अन्धकार कृष्णपक्ष काली गुफाएँ, दैत्य राक्षस मृत्यु-सूचक पक्षी डरावने पशु सर्प सिंह आदिका संयोग दिखायी पड़ता है। उस युगमें शक्ति केवल नारीमें प्रतिष्ठित मानी जाती थी इसी कारण उग्र प्रकृतिके वेग और आघात दैवी विपत्तियाँ बीमारी मृत्यु युद्ध-संघर्ष आदि सभी रूपोंमें रक्षाके लिए मनुष्य मातृ-शक्तिको पुकारता था और रक्षा न होनेपर क्षतिको उसीके कोपका परिणाम समझने लगा।

२

किन्तु, मातृ-शक्तिका सिर्फ भयकारी रूप ही हमारे सामने न था। नारीका एक उन्नयनकारी रूप भी है, जो हमेशा हमारी मानवजातिको आगे बढ़नेकी प्रेरणा देता रहा है। वास्तवमें परिवर्तन (ट्रैंस्फर्मेशन) उपस्थित करनेकी शक्ति नारीमें जन्मजात रूपसे वर्तमान है। नारीकी शारीरिक बनावट ही परिवर्तन-शक्तिसे ओतप्रोत है। वह अपनेमें और अपनेसे बाहर बड़ी तीव्रतासे परिवर्तन उपस्थित करती है। वह

को सूनको सूपमें पुत्रको शिशुमें बदल सकती है, मनुष्यके मन और आत्मामें परिवर्तन क्यों नहीं ले आ सकती? नारीके शरीरमें 'रक्त चमत्कार (ब्लड मिस्टरीज)का अध्ययन करनेवालोंका कहना है कि उसका ढाँचा पुरुषसे बहुत भिन्न है। ऋतु-स्राव गर्भाधान और गर्भ-धारण की अवस्थाओंमें न सिर्फ वह खुद बदलती है बल्कि अपने भीतरके शिशुके भी बदलनेका कारण और आधार बनती है। पुत्रोत्पत्तिके बाद उसकी उन्नयनकारी शक्तिका प्रभाव उसके वातावरणपर स्पष्टतया परिलक्षित होता है। वह पुरुषको प्रेरित करती है, समरत करती है। वैवाहिक जीवनमें आनेके पहले भी वह पुरुषको आकृष्ट करती है। एक राजकुमारी के लिए सैकड़ों राजकुमारोंका संघर्ष और शौर्यप्रदर्शनके लिए परीक्षाका विधान उसकी शक्तिके परिचायक है। वह प्रसन्न है सहानुभूतिपूर्ण है, समर्पित है तो शान्ति है, सुख है, ऐश्वर्य है और यदि वह क्रुद्ध है, विरोधी है, तो जीवनमें अकर्मण्यता पतन निष्क्रियता अशान्ति और दुखका राज्य छा जाता है। पुरुष-व्यक्तित्वमें परिवर्तन वह दोनों ही अवस्थाओंमें ले आती है। नारीके इस उन्नयनकारी रूपको दृष्टिमें रखकर मानव कालिन मातृ-शक्तिकी साधनाके अर्चनकी कलाका प्रस्फुटन भी किया है। देवीकी सिर्फ भयकारी मूर्तियोंसे ही हमारे पत्थर नक्काशीदार मन्दिर गुफाएँ, स्तूप आदि नहीं भरी हैं, बल्कि हमने अपने मनके उच्चतम आसनपर ऐसी मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की हैं जो सौन्दर्य शील और शक्तिकी अनुपम अभिव्यक्ति हैं।

उन्नयनकारी मूर्तियोंकी पूजाका भी अधिक विकास हुआ है। भयकारी काली मूर्तियोंके पेटसे ज्योति ऐश्वर्य और शक्तिकी नयी किरणें फूटी हैं। यदि भीषण डरावना आकाश और काली रात भयकारी मातृ-शक्तिका प्रतीक था तो सूरज चाँद सितारे उसके तेजके पुंज बनकर खिल उठे। इसी प्रकार प्राय विश्वके सभी आदिम धर्म-विश्वासोंमें ये प्रकाशपुंज आदि शक्ति वरद पुत्रोंके रूपमें दिखाये गये। मातृ-शक्ति अन्धकारके राक्षसों-

का विरोध करनेवाली बतायी गयी। अग्नि और तापको उत्पन्न करनेवाली कही गयी। मिस्रकी सेकमेत अग्निदेवी है और बास्त चन्द्रदेवी। नथका प्रभाव मिस्रकी सीमाको लाँघ चुका था जो प्लुटार्क (Plutarch) के शब्दोंमें 'यह सब है जो था जो है और जो होगा। जिसका आवरण किसी मर्त्यने न हटा है, न हटा सकता है। यह न केवल प्रकाशकी देवी है बल्कि सारी जीव-सृष्टिकी भाग्य-विधात्री है। उसकी कृपाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। यह भाग्यके धागेको बुनती है। नेथ आइसिस हेलेनिया हेस्तिया आदि सभी भाग्यकी स्वामिनी हैं सृष्टिकी जन्मदात्री भाग्यविधात्री। जैसा रामकृष्णने कहा था कि 'यह मकड़ीकी तरह जाले-को उदरसे उत्पन्न करती और ममताके कारण उसीमें फँस जाती है।' ये सभी देवियाँ आराधनासे प्रसन्न होकर राक्षसोंको संरक्षण देनेवाली किन्तु उनके उत्पातकी अति देखकर उनका विनाश करनेवाली हैं। राक्षस और देवता दोनों ही इनके पुत्र हैं पर ये हमेशा देव-सृष्टिकी रक्षा करती हैं। आदिमें सघन अन्धकार था मातृ-शक्तिकी कृपासे प्रकाश हुआ राक्षसोंने प्रकाशको छा लेना चाहा देवताओंने माँकी प्रार्थना की। देवीने राक्षसोंका विनाश किया 'यह कथा सभी देशोंमें थोड़े उलट-फेरके साथ वर्तमान है। मधु-कैटभ वधका प्रसंग इसी विश्वव्यापी इतिहासका प्रकाशमान अंश है।

मातृशक्ति अन्धकार है—प्रकाश है। साथ ही जल है पृथ्वी है वनस्पति है। इसी कारण उसकी वन्दना पृथ्वीके रूपमें और वनस्पतिदेवियोंके रूपमें विश्व-भरमें अनादिकालसे व्याप्त है। देवीको वनस्पति और वृक्षोंकी स्वामिनी कहा गया है। मनुष्यके लिए अन्न और 'अन्नपूर्णा' दोनों चाहिए, इसी कारण भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न समयोंपर नवान्न उत्सवोंके साथ देवी-पूजाका विधान है। मिस्रमें वनदेवी जो जीवोंके पालनके लिए फल देती है खजूरके पेड़पर निवास करती है। हथोर और नूट ऐसी ही देवियाँ हैं जिनके वृक्षोंसे सुधाका फल निकलता है। वृक्षोंकी यह दिव्य कल्पना भी कितनी व्यापक है। गीताने अश्वत्थ वृक्षकी तरह प्रायः इनकी

इस व्यापक विस्तार पृथ्वीपर है। ईसाई और हिन्दुओंमें यह विश्वास बहुत प्रबल रूपमें पाया जाता है। देवीका प्रभाव पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है। कमलका पुष्प देवीका सर्वप्रिय पुष्प है। आइसिसके रथका पहिया कमल-का है। देमेतेर और मेडोनाके हाथमें कमलका फूल है। ताराका आसन कमलका है। 'श्वेत-पद्मासना' हमारे लिए अपरिचित नहीं है। राम सोमिरा ईस्तर सेरेस और स्पेस सभीके हाथोंमें गेहूँ या जौकी बालियाँ हैं। अन्नपूर्णाके हाथमें अन्नपात्र है और यह विश्व-कल्याणमें अपना सब कुछ दान देनेवाले शिवको भी अन्न-दान करके अपने विश्वव्यापी रूपका प्रमाण देती है। पुराणोंमें शायद सर्वाधिक प्रख्यात रूप शाकम्भरीका है। महा दुष्काल पड़ गया था। सौ वर्षोंके सूखेके कारण जल-स्रोत सूख गये। जीव मरने लगे। तब शताक्षीकी आँखोंसे लगातार आँसुओंकी झड़ी लग गयी।

शत शत नत्रों से बरसाया मां जिन तक अविरल जल।
भूखे जीवों को दिया अमृत सम पुष्प शाक दल॥

पृथ्वीकी तरह देवी पशुओंकी भी माँ है। पहाड़ोंकी भी पर्वतोंकी भी। परमाके हाथमें जौकी बालियाँ हैं और वह भेड़ोंसे घिरी है। सिंह अथवा बैल मातृ-शक्तिका सर्वप्रिय वाहन है। साइबले (रोम) फारचुना (इटली) और दुर्गा सिंहपर चढ़ती है। एतिम दो सिंहोंके बीचमें खड़ी है, सिंहोंमें बैठती है, मेडोनाके रूपमें यह सिंहासनपर बैठी है। इतना ही नहीं देवीके लिए मछली मृग भालू तथा अनेक पशु-पक्षी सवारीके काममें लाये जाते हैं। बहुत-सी देवियोंके शरीर भी जानवरोंसे मिलते जुलते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्यने सभी रूपोंमें सभी आकारोंमें देवीको पूजनेका प्रयत्न किया है।

मूर्ति स्थापत्य चित्रकला संगीत काव्य सभीमें मातृ-शक्तिके प्रतीकोंकी प्रधानता है। यह कला और ज्ञानकी देवी है। सौन्दर्यका पुंजीभूत विग्रह है। घरके चूल्हेसे लेकर मन्दिरके हवनकुण्ड तक कमरेसे लेकर मन्दिरके गर्भगृह तक संभोग-शय्यासे लेकर समाधिके स्थान तक सर्वत्र

शिल्पीका सब

उसका आधिपत्य है। कपड़े बुननेसे लेकर मातृ-शक्तिकी विभिन्न मूर्तियों के लिए पटाम्बर तैयार करने तक मानव जातिने अपने मन और रुचिमें जाने कितनी उन्नति की है। विश्वमें जो कुछ भी सुन्दर है शक्तिपूर्ण है तथाचारमय है वह सब मातृ-शक्तिका ही रूप है।

आध्यात्मिक उन्नयन मातृ-शक्तिकी पूजाकी सर्वोत्तम उपलब्धि है। वह मनुष्यके चरित्रको पूर्णतया बदल देती है। मातृत्वकी सार्थकता पुत्रको जन्म देनेमें है। मातृ-शक्ति प्रकाश-पुत्रोंको जन्म देती है। उनका आध्यात्मिक उत्कर्ष अतुलनीय है क्योंकि वह राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा मुहम्मद मूसा सबकी जननी है। इन प्रकाश-पुत्रोंके जन्मका एक मात्र श्रेय सतीको है इसीलिए ईसाई लोग उसे 'शाश्वत कुमारी' भी कहते हैं। मातृ शक्ति अपने विकासकी चरम स्थितिमें शुद्ध विद्या या ज्ञानका रूप धारण कर लेती है। सोफिया फिलोसोफिया तारा (विधि) होचमा (ज्ञान) आदि ज्ञानकी देवियाँ हैं। शकीना भगवान्का ही दूसरा रूप है और रामेश अपने पुत्रोंके लिए हमेशा अश्रु बहाती रहती है।

आध्यात्मिक उन्नयनके धरातलपर उपस्थित मातृ-मूर्तियोंमें भारतीय देवियोंका अपूर्व स्थान है। एरिख न्यूमन कहता है कालान्तरमें भारतीय मातृ-शक्तिने प्रकाशपूर्ण उन्नयनकारी रूपके चरम उत्कर्षको प्राप्त कर लिया। केवल तन्त्रोंकी शक्तिके रूपमें ही नहीं काली स्वयं जो भयकारी मूर्ति भी उन्नयनकारी आध्यात्मिक स्तरपर स्वतन्त्रता और मुक्तिकी महान् देवी बन गयी जिसकी तुलनामें पश्चिमकी कोई देवी ठहर नहीं सकती। और सर्वोत्तम रूपमें 'तारा' का उदय हुआ जिसके दैवी प्रकाशकी कोई सीमा नहीं। प्रज्ञापारमिताके रूपमें वह बोधिसत्त्वोंकी भी जननी है। (दि ग्रेट मदर पृष्ठ ३३२)

वस्तुतः भारतीय वाङ्मयमें पराशक्ति अथवा देवीके रूप गुण और शक्तिका जो विवरण मिलता है, वह सभी दृष्टियोंसे अनुपम है। देवीका स्वरूप सम्पूर्ण भारतीय साधनाकी मनोज्ञ परिणति है। संसारमें जो कुछ भी

सत्य है शिव है, सुन्दर है वह सब यहाँ एकत्र समन्वित है। यह देवशक्तियों का समवाय है पर उनकी जननी भी है। संसारमें जहाँ कहीं भी पुञ्जित पवित्रता करुणा उदारता क्षमा चेतना बुद्धि जो कुछ भी है, सब उसीका अंश है यह सभी अंशोंकी समष्टि है सबसे अलग पर सबमें परिव्याप्त है। यह सभी शक्तिमान् तत्त्वोंके भीतर अन्तर्निहित शक्ति है। आजके वैज्ञानिक युगमें भी 'शक्ति' नाम कितना सार्थक है। हर आज युरूपके शब्दोंमें समानार्थी किसी भी भाषामें इतना अर्थवान् कोई शब्द नहीं है, जैसा संस्कृतका 'शक्ति'। क्योंकि इसके रूपमें शक्ति ही जिसका कारण है और जिसके रूपमें कार्य जो उससे शक्ति उत्पन्न होता है। यही कारण है, वही कार्य। इसी कारण योगिनी हृदय-तन्त्र उसकी वन्दना करता है प्रणाम है उस सत्-चित् आनन्द रूपिणी महाशक्तिको जो काल और काष्ठ (Time and Space) में सर्वत्र स्थित है और जो समस्त जीवोंमें जागृत प्रकाशकी तरह विद्यमान है। (शक्ति और शाक्त पृष्ठ २७)

कितनी व्यापक है यह मातृ-शक्तिकी पूजा। कितना विपुल है इसका ऐश्वर्य। कितनी अगाध है इसकी कल्पना। कितना परिपावन है, इसकी साधनाका इतिहास। सारे भूमण्डलके कण-कणमें इसके प्रति निश्चित श्रद्धाके चिह्न विद्यमान हैं। जहाँ भी माँ है सृष्टि है वहाँ सर्वत्र मातृशक्ति की पूजा है। जो लोग इस पूजाके बारेमें वैदिक-अवैदिक शास्त्रीय अशास्त्रीय मर्यादित-अमर्यादित विवाद उठाते हैं वे कितनी संकुचित दृष्टिके शिकार हैं।

इन मनोवैज्ञानिक विश्लेषणोंसे कुछ ऐसे तथ्य सामने आते हैं जिन्हें अपनी सीमाओंके कारण मनोवैज्ञानिक सामने ले आना नहीं चाहते। पर यह विश्लेषण इस बातकी ओर संकेत नहीं करता कि अनादिकालसे आज तक मनुष्य किसी विराट् सत्ताके प्रति जिज्ञासु रहा है उसने उसे पूजा है प्यार किया है—कभी भयसे कभी प्रयाससे कभी मनकी सारी कोमल भावनाओंके विनम्र नैवेद्यके साथ। आज हमारा विज्ञान एक ऐसी

स्थितिमें पहुँच गया है जहाँ वह पहलेकी अपेक्षा ज्यादा नम्र है विनत है, उसमें वह उतावलापन उग्रता और आक्रोश नहीं है जो सत्रहवीं शताब्दीमें था जिसके वशीभूत होकर वह धर्मकी हर मान्यताको चुनौती देना अपना कर्तव्य समझता था। आज मानव ज्यों-ज्यों नयी शक्तियोंकी खोज कर रहा है ज्यों-ज्यों प्रकृतिके रहस्यको समझनेमें सफल हो रहा है त्यों-त्यों वह इस त्रिपुरसुन्दरी प्रकृतिकी असीम शक्तियोंसे अभिभूत होता जा रहा है। आज यह पृथ्वी कितनी तुच्छ हो गयी है हमारे सामने अनन्त प्रकाश वर्षोंकी परिधिमें फैले हुए असंख्य नक्षत्र ग्रह केतु, तारापुंज नित नये वैचित्र्यके साथ उदित हो रहे हैं। ब्रह्माण्डमें व्याप्त इस अनन्त चेतना-शक्तिके हम यदि विरोधी हैं तो हम कितने तुच्छ हैं कितने असमर्थ कितने पंगु हैं। यदि हम इस विराट अन्तर्वर्तिनी शक्तिकी शाश्वत धारासे सम्पृक्त हैं बृहत्की ओर अग्रसर हैं तो हम कितने महान् हैं कितने शक्तिशाली हैं। आज बड़ेसे-बड़ा वैज्ञानिक ब्रह्माण्डमें व्याप्त अनिर्वचनीय ऋत (order)के सामने नतमस्तक है। १९३०में बर्लिनकी वह सन्ध्या किसे भूलेगी जब विश्व-वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने विश्वकवि रवि ठाकुरसे पूछा कवि क्या मानव सृष्टिके नष्ट हो जानेके बाद प्राकृतिक नियम भी नष्ट हो जायेंगे। जैसे क्या यह सत्य कि त्रिभुजके तीनों कोणोंका योग दो समकोणके बराबर है व्यर्थ हो जायेगा ?'

मानवतावादी कविने कहा 'हाँ क्योंकि ये नियम मानव-बुद्धिके किसी-न-किसी स्तरकी उपलब्धि हैं फिर मानव-बुद्धिके विलयके बाद इनका अर्थ ही क्या रहेगा ?' वैज्ञानिक चुप हो गया। रुककर बोला 'यद्यपि आप भारतसे आ रहे हैं तथापि मैं आपसे कहीं अधिक आस्तिक हूँ।'

फिर मनुष्य क्या करे ? विराट्से विराट् मस्तिष्क उच्चतम मेधाके लिए भी जो अगम्य है, अनिर्वचनीय है, उसको तर्कमें सीमित कैसे कर उसे बुद्धिमें कैसे बाँधे उसे अपने ज्ञान-पाशमें आबद्ध करनेके लिए वह शताब्दियोंसे प्रयत्नशील है पर उसका तुच्छतम बिन्दु भी उसकी समझमें नहीं

बँध पाया। वह हैरान होकर सिर पटकता है, घबड़ाकर माथा थामकर बैठ जाता है—नेति नेति नेति नेति।

तभी दक्षिणेश्वर धीमे ठठाकर हँसता है 'पागल कभी अँजुटेमें पुरुष समुद्र भरता है कभी कमजोर मुट्ठीमें हिमालय बाँधता है कभी पैर अड़ानेसे महानदीकी धारा रुकती है। कभी पंछीके पंखसे आकाश नपता है। सुनो सुनो देखो वह गा रहा है—नरेन्द्र—भारतीय मेधाका अप्रतिम स्फुलिंग प्रज्वलित तेजपुंज। सुनो कौन-सी आवाज है यह।

आमाय दे मा पागल करे (ब्रह्ममयी)
आर काज नाइ ज्ञान विचारे
तोमार प्रेमेर सुरा पाने करो माता आरा
ओ मा भक्त चित्तहरा डुबाओ प्रेम सागर

माँ मुझे पागल कर दे ज्ञान-विचार-तर्ककी मुझे कोई जरूरत नहीं। मैं तो तुम्हारे प्रेमकी सुराका पान करके मतवाला होना चाहता हूँ। माँ भक्तोंके चित्तको चुरानेवाली मुझे प्रेमके समुद्रमें डुबा दे

यह पलायन नहीं है। तर्क-वितर्क अवकरी बुद्धिकी अवमानना है। विश्वास न हो तो रामकृष्णके चिकित्सक डा सरकारसे पूछो जो उनकी पागलपनसे भरी मस्तीके सामने सारा वैज्ञानिक तर्क और ज्ञान लिए धमककर खड़े रह गये थे। जिन्होंने आठ इसलिए ही लिये थे कि वैज्ञानिकको विक्षुब्ध होकर भावना शोभा नहीं देता। पर अचानक ?

तब हम क्या करें ?

दक्षिणेश्वर फिर हँसता है। तुम्हें करना कुछ नहीं है। करेगी तो सब वही मेरी भविष्य महामाया। जो सारे ब्रह्माण्डकी सूत्रधारिणी है तुम तो सिर्फ उसके हाथकी पतंग हो उड़ो उसके आसरे। हाँ उसने कोई कमी न रहे कोई कसर न रहे। कदाचन कोई फर्क न आवे। तुम्हारी मान अभिमान उड़नेकी गति मतिका भ्रम कभी न्यून न हो। देखो-देखो वह बाजारके चौराहेपर बैठकर पतंग उड़ा रही है। असल

मिलरौंका मेल

रंग-बिरंगी पतंगे। आशाके पवनमें मायाकी डोरीसे बँधी पतंग। कभी एक-दोको वह काट देती है। कटी पतंगें जब हवामें भागती विराट् अनन्तमें लीन होती हैं तो वह कैसी मुट्ठीसे तालियाँ पीटकर हँसता है।

श्यामा माँ उड़ाच्छो घुड़ी (भव संसार बाजार मामे)
आशा वायु भरे उड़े बाँधा ताहे माया दड़ी
काक गंडी-मंडी गाथा पंजरादि नाना नाड़ी
घुड़ी सगुणे निर्माण करा कारिगरी बाड़ाबाड़ी
विषये मंजेछो मंजा कर्कशा होयेछे दाड़ी
घुड़ि लक्षेर दुटा एकटा काटे हँसे दाओ मा हाथ चापड़ि
प्रसाद बोले दक्षिणा बातासे घुड़ि जाबे उड़ि
भव-संसार समुद्र पारे पड़बे गिये ताड़ाताड़ी

बस तुम्हारे बसमें सिर्फ कार्य करना है उसे लगनसे निष्ठासे किये जाओ। वह महाशक्ति तुम्हें रोज पुकार-पुकारकर कहती है

"Arise my child and go forth a man Bear manfully what is thy lot to bear that which comes to thy hand to be done do with full strength and fear not. Forget not that I the giver of manhood the giver of woman-hood the holder of victory am thy Mother Think not life is serious. What is destiny but my mother s play Come be my playfellow a while meet all happiness merrily" (Kali the mother)

'उठो, बच्चे उठो मर्दकी तरह आगे बढ़ो। जो तुम्हें करना है

---

१ सुप्रसिद्ध बंगाली धर्मकवि रामप्रसाद जिनके श्यामापीत सैकड़ों वर्षोंसे लोगोंके कण्ठहार बने हैं।

बहादुरीके साथ करो। इसे कभी मत भूलो कि नारीत्व और पुरुषत्व प्रदान करनेवाली मैं तुम्हारी माँ विजयशाली तुम्हारे साथ है। मत सोचो कि जिन्दगी मुश्किल है। भाग्य कुछ नहीं सिर्फ मौका देता है। आओ कुछ देरके लिए मेरे साथ खेलो और सभी मुश्किलोंको खुशीसे झेलो।

—भगिनी निवेदिता

ताराका पाप

पूज्य चरणोंमें पतिताका सादर प्रणाम

यह तीसरा दिन है जब मनको बार-बार समझाकर हार चुकी हूँ कि जो हो चुका उसे मूक भावसे समूचे आर्यावर्तके ऋषियों-मुनियों और देवताओं-ने सत्य और न्याय समझकर जो व्यवस्था दे दी उसे माथा टेककर स्वीकार कर ले पर यह आश्वस्त नहीं हो रहा। पुच्छछिन्न छिपकलीकी तरह अपनी आकांक्षाओंको ही निष्प्राण माननेकी चेष्टासे यह उपरत नहीं होता। इसीलिए हारकर यह पत्र लिखने बैठी हूँ। सम्भव है इस मनमें बाष्पकी तरह उठे छिन्न आकुल भावनाओंको एक बार व्यक्त कर देनेसे थोड़ा सन्तोष मिले कूलंकषा उद्दाम जलको बहा देनेसे किनारे कुछ उपराम पा सकें।

आप पूछेंगे कि फिर यह पत्र औरोंके नाम न लिखकर मैं आपको ही क्यों लिख रही हूँ। मैं जानती हूँ मर्यादा और आचरणकी शुद्धताके अभिमानी वशिष्ठसे करुणा और सहानुभूति पानेकी आशा व्यर्थ है। सुनाम की पुत्रवधूका जब सबरने अपहरण किया तो आपने विश्वामित्रके विरुद्ध शस्त्र उठानेमें रंचमात्र भी संकोच नहीं किया था। ऋषिपत्नीके लिए दाशराज्ञ युद्ध-जैसा लोमहर्षक काण्ड आपने ही उपस्थित किया था। अरुन्धती जैसी अडिग सतीत्ववाली नारीके पति होकर आप कभी भी मुझ-जैसी चंचलस्वभावा नारीपर कृपा नहीं करेंगे। यह सब जानकर भी मैं पत्र आपको ही लिख रही हूँ। क्योंकि मनोवांछित न्यायकी आशा लेकर मैं लिखने नहीं बैठी।

मेरे लिए न्याय और अन्यायका भेद नहीं रह गया है। मैं शिशिरके हिम-वर्षामें निमज्जित उस कमलिनीकी तरह हूँ जिसमें पत्ते और फूल सब

नहीं जायेंगे। पुत्रसे वियुक्त और पतिसे तिरस्कृत होकर मैं जिस मनस्ताप पड़ी हुई हूँ उससे अधिक अपमानपूर्ण और दुःखद और क्या हो सकता है! इसीलिए आप-जैसे मर्यादावादी और कठोर शासन-विधायक व्यक्तिको यह पत्र लिखते समय मैं जरा भी आशंकित नहीं हूँ। यदि न्यायके क्रूर प्रस्तर खण्डपर शीश पटककर मुझे अपने व्यक्तित्वकी बलि ही देनी है तो मृदुता और कठोरताका विवेक क्या? हाँ इतना निवेदन अवश्य करूँगी कि इस पत्रको पूरा पढ़कर मेरे प्रश्नोंका उत्तर देनेकी कृपा करें। देवगुरुकी पत्नीके मिथ्या गौरवसे आनन्दित करके मेरे हृदयको आपकी भुलाकर देवताओं और ऋषियोंकी भरी सभामें आपने मेरे मस्तकको लज्जा और ग्लानिसे झुका दिया था। किन्तु क्या उपार्जित अपराधीको नतमस्तक कर देनेवाली लज्जाको ही पाप-स्वीकृति मानकर आप सन्तुष्ट हो जायेंगे? आपके हृदयमें क्या एक बार भी यह शंका नहीं उठी कि ऋषियोंके सम्मिलित निर्णयपर ताराको भी कुछ कहनेका हक है? क्या एक बार भी मन-प्रदेशकी अतल-स्पर्शिनी दृष्टि ताराके कलुषित हृदयकी पीड़ाको न देख सकी? क्या एक बार भी मनःपूत जिह्वापर 'तारा क्या तुम्हें भी कुछ कहना है?'" यह वाक्य स्फुरित न हुआ?

आप पूछेंगे — देवगुरुकी पत्नी होकर ऐसा पतित आचरण तुमने क्यों किया? मैं भी अपने मनसे बार-बार यही प्रश्न पूछती हूँ। आखिरकार धन विद्या-वैभव सभी कुछ स्पृहणीय था। देवगुरुकी पत्नीका गौरव पुलोमजा शचीसे भी बढ़कर था। फिर ऐसे पदकी मर्यादाको तृणवत् तिरस्कृत करके परपुरुषमें आसक्त होना पतित आचरण है, इसे मैं स्वीकार करती हूँ। पर मेरे इस पतनमें देवताओं और देवगुरुका भी कम हाथ नहीं रहा। मैं मानती हूँ कि अत्रिपुत्र चन्द्रमाको प्रथम बार देखते ही मैं विस्मय-विमुग्ध रह गयी थी। उस दिन देवपुरी नक्षत्रोंकी नाट्य-सभा सी बनी थी। प्रजापतिने चन्द्रमाको विप्र, नक्षत्र और ओषधियोंका स्वामी बनाया था। चन्द्रमाके रूपमें उस दिन कुछ ऐसा ऐन्द्रजालिक सम्मोहन था उसके आचरणमें

कुछ ऐसा आकर्षण था कि मैं सुध-बुध खोकर उसे एकटक देखती रह गयी। राजसूय यज्ञसे संसारको वशीभूत तो उसने बादमें किया पर इन्द्र मरुद्गण विद्याधर रुद्र आदित्य आदि तो सब उसके तेजके सम्मुख उसी दिन मलिन लग रहे थे।

उस दिनके चन्द्रमाके व्यक्तित्वम कुछ ऐसा था जो मेरे मनकी रिक्तता को और अधिक गहन बना रहा था मैं पुष्पहीन वल्लरीकी तरह अपने ही विमुक्त पुष्प-गन्धके लिए जैसे हाथ फैला रही थी अपने हृदयकी पुण्य-कल्पनाको पहली बार साकार देख रही थी और सोम-सुवास आहत सर्पिणीकी तरह उसकी उस अमृत वृष्टिमें प्रमत्त होकर झूमने लगी थी।

'तारा सान्ध्य-पूजनका समय हो गया।' आंगिरसने कहा था। और मैं स्वप्नकी रेशमी दीवारोंको तोड़कर बाहर आ चुकी थी। मैंने अपनेको बहुत सँभाला आश्रमके कार्योंमें दिनरात लगी रही। मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि चन्द्रमाको अब अपने हृदयसे सदा-सदाके लिए निकाल दूँगी। इसी लिए फिर जब भी चन्द्रमा मेरे सामने आता मैं किसी भी कार्यके बहाने वहाँसे हट जाती थी।

किन्तु देवपुरीका विलास और वासनामय वातावरण निरन्तर घना होता जा रहा था। प्रजापति रुद्र और नारायण तक उससे मुक्त न रह सके। इन्द्र और उसके अन्य मित्रोंकी तो बात क्या। तिलोत्तमापे रूपपर आसक्त होकर प्रजापतिका पतन उनके जीवनकी पहली घटना तो न थी। समुद्र-मन्थनके समय मोहिनी रूपके पीछे काम-विक्षिप्त शंकरका अनुधावन हँसीकी वस्तु नहीं करुणाका विषय था। पत्नीके सतीत्वके कारण अवध्य जालन्धरकी पत्नीका पातिव्रत नष्ट करके उसे वध्य किसी औरने नहीं स्वयं नारायणने बनाया। इन्द्रके कुकृत्य तो पराकाष्ठापर पहुँच रहे थे। अप्सराओंके नृत्य और सुरा-पानमें प्रमत्त होकर उसने क्या नहीं किया।

किन्तु अपने इसी शिष्यके इन कुकृत्योंको रोकनेके लिए आंगिरसने

विस्तार है जहाँ समाजने एक भी हरा अंकुर नहीं रहने दिया। मैं अपने पापके लिए, उस पतनके लिए, सभी दण्ड सह लेती। पर मुनिवर, मेरे सत्यके लिए दण्ड क्या उचित है? मेरे अबोध शिशुको मेरी गोदसे छीन कर समाजको क्या सुख मिला?

विनीता
अभागिनी तारा

इतिहासकी साक्षी है कि मुनि वशिष्ठने ताराके इस पत्रका कोई उत्तर दिया नहीं।

०

देवी मेरी प्राण-वल्लभा

[हमारे देशमें रमेश्वरी प्रणय साधनाका अपना एक विशेष महत्त्व है। साधक अपनी इष्टदेवताका सम्मुख परिव्याप्त अनुभव करते हुए उसके चरणोंमें अपना सब कुछ सौंप देता है। अक्षोभ्य भैरवकी डायरीके अंश साधककी उस अनिर्वचनीय तन्मयताको शब्दोंमें बाँधनेका एक प्रयत्न मात्र है।]

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् २०१६

उमस है, मौन रुद्ध होकर सबको तोड़ देना चाहती है। शुक्ल प्रतिपदाका चाँद कभी भी हमारी आँखोंके सामने नहीं आता। शीतल नन्हीं निष्कलंक चाँदको देखनेके लिए हमने किया ही क्या है? रात आधीसे अधिक बीत चुकी है, मैं पश्चिमी आकाशकी कालिमामें झिलमिलाते तारोंको देख रहा हूँ। इतनी नीचे रमकी ठण्डी आभा बखेरते हुए निस्पन्द तारे।

और तभी लगता है कि सामनेका वह निष्कम्प ज्योतिपुंज तारा सिमट कर छोटा और तीव्रतर होता जा रहा है जैसे मूर्छित उसके प्रकाशके गुणमें सब डूबा तब डूबा और उस गुंजाकार प्रकाशमें किसकी विराट् काली छाया है वह, जलपर मँडराते हुए असंख्य भौरोंकी तरह लरजते हुए देख नीला नील गगनसे ढँका आपाद शरीर और वह तारा? कुछ नहीं किसीके विराट् भौंहे उन्नत भालकी त्रिपुटीपर जड़ा कौस्तुभमणि है। मैं घबड़ाकर आँखें मूँद लेता हूँ। एक सरसराहट जैसे आकाश सिमटकर नीचे उतर रहा है, अपने विराट् पंखोंको समेटकर मेरे शीशपर बैठ जाने

को आतुर। मैं आघातसे घबड़ाकर आँखें खोल देता हूँ। काली छाया बहुत पास आ चुकी है, क्योंकि अँधेरेमें भी मैं उसके मुखको देख सकता हूँ। दूरसे देखनेके कारण ही तुम काली लगती थीं किन्तु पास आनेपर सुडौल गोरा भरा भरा कान्तिपूर्ण मुख प्रातःकाल ओस-धुले स्वर्णकमल-सा किंचित् झुका हुआ जैसे आत्मत्यागी पत्तियाँ सुबहकी पीरिक किरणकी सारी आभा अपनी सीमामें बाँध लेना चाहती हैं। आह, तुम्हारे मुखपर कितनी सुन है। इसकी धुली शक्ति रेखें सेमलकी किन्नी स्वर्ण-पाँखुरीसे उलझ पड़े हैं इस आभाके समूहमें गोरोचनका तिलक श्वेत कमल-कोशकी केसर-कनी की तरह दमक रहा है। मैं विजड़ित चित देखता ही रह जाता हूँ। तुम्हारी नीली सीपीकी तरह पारदर्शी आँखोंमें कितनी शान्ति है स्थिरता है अचंचल महर्षिका अथाह ममता भरा मन।

और तभी एक नया स्वर अपनी आह्लादकारी मधुरिमामें मेरी चेतना को बाँध लेता है। किसकी है यह आवाज? तुम्हारे वक्षपर झूलते हुए मणि-मय हैकलकी तुम्हारे रेशमी आँचलके कोरोंमें गुँथे कुन्द फूलकी तरह गोल-गोल लघु-लघु घुँघरुओंकी? तुम्हारे कटि-प्रदेशपर अवस्थित सोयी हुई करधनीकी? तुम्हारे श्वेत अरुणाभ कोमल चरणोंको चूमती हुई पायलकी? आह कैसा सम्मोहन है इस स्वर-समवेतमें। कोई मनके फूलको स्वरोंके नाखूनसे खुटक देता है। तीखा झनझनाता दर्द सारे शरीरमें भर जाता है।

मैं एक अब नवल विद्युत्की तरह मूर्तिमान् तुम्हारे शरीरको आपाद मस्तक आँखोंमें भरकर पलकें बन्द कर लेता हूँ।

'अमोघम्' ”

आह कितना विह्वल कर देनेवाली ध्वनि है। कसमसाती छटपटाहट-सी उभरती हुई यह जादू भरी आवाज। सारा शरीर सिहर उठता है, अमरबल्ली के धुएँ जैसी लटकी तरह बिखर-बिखरकर तुम्हारे श्याम-श्याम तारे अधरोंपर छा जाते हैं। यह फुसफुसाहट-सा अस्फुट सम्बोध दिशाओंकी ओर

लतामें अमृतफूल-सा खिल उठता है।

मैं देखता हूँ पहली बार नीली झीलमें सफेद मछली-सा कुछ थिरकता है। चाँदनीसे धोयी आँखें मुसकराती हैं। नील गगनमें पल झूमकी आराम लहराते हैं। विशाल बंकिम भौंहें धारा-सी खिंच जाती हैं कोमल कजरारी पलकें हीरे-सी स्वच्छ कनीनिकाको धारा-सी झलकाती हैं। तुम अपने रेशमी अलसायित बालोंकी बिखरी लटको अपनी केसरकिरण-सी पतली चमकदार अँगुलीमें उलझा रही हो। उलझा रही हो और मुसकरा रही हो।

मैं घुटनके बल बैठ जाता हूँ आँखें झप जाती हैं आँसुओंकी गरम धारासे मेरे गाल भीग जाते हैं। मैं फिर देखूँगा अपलक-अपलक किन्तु मेरी आँखें खुल नहीं पातीं। आह मेरी आँखें

जाने कबतक बैठा रहा निश्चेष्ट, विचलित–विह्वल। और जब आँखें खुलीं तो सामने औंधा-सा काला आसमान था चिड़ियोंकी आसमान जिसने तुम्हारे पदचिह्नोंकी कोई रेखा भी नहीं छोड़ी तुम्हारे पथका कोई निशान भी न रहने दिया। तो तुम चली गयी। बिना कुछ कहे बिना कुछ बताये। और मैं अपदार्थ अकिञ्चन उस एक क्षणके आनन्दमें ही विह्वल होकर तुम्हें खो बैठा। हा दुर्भाग्य अशोभ्य

अमावस्या आषाढ़ संवत् २०१६ :

अमावस्याकी काली रात। बादल घिरे हैं। बड़े-बड़े डरावने बादल। जमीनसे आसमान तक काजल काजल काजल। क्यों तुम्हारा चेहरा मेरी आँखोंमें आ बसा। ओ अज्ञात अपरिचिते! क्यों तुमने अन्धकूपमें पड़े इन नयनों के सामने अपनी पूनम-माया बिखेर दी? आह मायाविनि! इन चंचल प्राणों-को कुसुम-सायकसे क्यों बेध दिया? घायल मछली-से तड़पते प्राण तुम्हारी उस ज्योतिके सहारे अनवरत चिपटे। कहाँ हो? किधर हो? तुम मिली ही क्यों? आह प्राणान्तक प्रवंचना निर्मम छलना!

से देशे ए देशे अनेक अन्तर
जानए सकल लोके
से देशे ए देशे मिशामिशि आछे
ए कथा कभो ना बाछे

इस देश और उस देशमें बहुत अन्तर है यह सभी जानते हैं किन्तु इन कभी न मिलनवाले इन देशोंका जब मिलन होता है तो इस अनिर्वचनीयपर कौन विश्वास करेगा।

श्रावण कृष्ण अष्टमी २०१६

तुम मुझे पागल क्यों नहीं कर देती। मेरी सारी चेतनाका अपहरण क्यों नहीं कर लेती। मैं तुम्हें कहाँ ढूँढूँ कहाँ कहाँ? क्यों एक कल्पनाको सत्य मानकर पागल हिरन-सा वन-वन दौड़ता फिरूँ। उठते-बैठते तुम्हारी ये कजरारी आँखें मेरे मनको हजारों बाणोंसे घायल कर देती हैं। कौन छिपनारी कनीनिकोंमें चमकती आँखें जैसे हजारों-हजार जादूगरोंमें निरन्तर बरसती हैं। कभी उभी आँख रस रचनारी आँखें जाने कहाँका रहस्य भरा है तुम्हारी उन आँखोंमें। वर्षाकी काली गरम हजारों-हजार आँखें भर जाता और नाचती है। स्नेह ममता प्यार क्रोध विरक्तिसे भरी आँखें

किन्तु तुम्हारी आँखोंमें आँसू? पाषाणमें जलकी धारा? फिर कितनी आँखें हैं ये? नीले आकाशकी तरह विराट खाली-खाली आँखें मैं सोच सोच कर पागल हो जाऊँगा। मुझे कुछ नहीं मालूम। मुझे कुछ नहीं पता कि तुम कौन हो? मुझे कुछ नहीं चाहिए। वेदनाकी पीड़ा दूर कर दो मेरे विश्वको मुखरित कर दो मेरे गर्वोन्नत शीशको बाँहोंमें छुपा लो ~

शिवानीका सेतु

आः निष्ठुर विश्वमोहिनि
धीरगंधी मदतरंगी
मन हृदय को हिरण नाभिगंध से पागल करो
तुम अकिंचन सुलगते-से तृण विटप में
नवल किसलय तोंगिये मोचर मरो।
सिन्धु सैकत में अकेले
गर्व उन्नत अग्नि जलते
दीप के माथे तिमिर का ज्वार उन्मत्त सा भरो।

छिप गत हा
गर्भ एह टूटें गिरें
उन्मुक्त नभ में नवल आभा की गरजती
अनगिनत-सी सर्प लहरों को भरो
शृंग झमके झूम जावें
चाँदनी के अतल तल
पारद शिराएँ शान्त होकर
चेतना का मूल चेटें
तर्क-पीड़ित बुद्धि में जड़ता भरो
अनुताप पूरित तप्त जलते
दाह पीड़ा में लहरते
इस तिरस्कृत शीश पर तुम
अगरु वासित मलय शीतल
सप्तपर्णी केश की छाया भरो
आः मायाविनि
मचलते हिरण शावक-से हृदय को
नयन वंकिम विषम शर घायल करो

आश्विन नवरात्र २०१६

हाँ तुम्हीं हो वह, वही स्पराति वही नील अम्बरी वही जगमगाते नगणोंकी कुसुम-माला। वही विद्युल्लता-सी देह-यष्टि। उभरे वक्ष भाग पर हवाकी लहरमें काँपते हुए केश-पुंज। वही अस्फुट ध्वनि वही गुन गुनाते अधर। सब कुछ वही। तो तुम आज मिल ही गयी। किन्तु तुम्हारे भालपर स्वेदके ओस-कण क्यों? तुम्हारी सुरभित साँसोंमें यह उष्णता कैसी? तुम्हारे गुल्फोंमें धूलिके कण कहाँसे? तो तुम दौड़ती क्यों हो। रुको? खड़ी हो जाओ न!

असोम्म

'किधर हो तुम कहाँ छिप गयी? यह लुका-छिपी कैसी।

ओ तुम सामनेके झुरमुटमें जो जाना चाहती हो। मागव तुम। ठहरो ठहरो? तो तुम मेरी आवाज नहीं सुनती। मैं थककर बैठ जाता हूँ 'कितना बड़ा अथाह रेगिस्तान है यह। लाल बालूकी इस अछोर मरुभूमिमें न तरु है न छाया। एकाकी चलता हूँ पैर डगमगाते हैं। आँखें भर आती हैं प्राण पलकोंतक आ जाते हैं। इस विशाल मरुदेशमें बनजारे-सा प्यासा भूखा कोई भूला बटोही बिलखता है। धूलधूसरित पीड़ामें छटपटाते हुए, कम्पित तन पैर डगमगाते हुए, स्वेदस्नात हाँफते गिरते-पड़ते हुए मैं चलता हूँ। निरन्तर दूर—उस दूर क्षितिजके पास एक विशाल धानी आभामें मृगमरीचिकामें काँपता हुआ वहाँ कोनोंमें निखर-निखरकर भी अपने अस्तित्वको सँभाले हुए चाँदी-सा चमकता एक मन्दिर है। जिसके स्वर्णकलशकी चमक नीले आकाशमें बिजली-सी चमकती है जिसकी रंग-बिरंगी ध्वजाएँ इन्द्रधनुष-सी मचलती हैं। वहीं वहीं किसी कोनेमें तुम छिपी हो' तुम जो मुझे देखकर आँखोंकी एक नटखटी रँगलीमें उलझाकर हँसोगी—कब आये क्या ईषत् मुसकराकर पूछोगी किन्तु मैं उस मन्दिरतक कभी न पहुँच पाऊँगा उस स्नेह-छायामें

पिलनीका सेतु

कभी न छुड़ाऊँगा। मेरे प्राण उस जालमें तड़फड़ाते हैं जैसे कि पंछी घायल हो पंख फड़फड़ाते हैं।

किशोरी चरणे पराण सँपिछि
भावते हृदय भरा
देखो हे किशोरी अनुगत जने
करो न चरण छाड़ा

मैंने श्री किशोरी माँ तेरे चरणोंमें प्राण सौंप दिया है। तेरे प्रेमसे हृदय भरा है। श्री किशोरी अनुगत जनके काँपते हाथोंमें अपने चरण छुड़ा न लेना। इति शमम्।



पशु-प्रेम मानुष-द्वारे

बचपनमें विनोम जब 'हंसकुल परी' की कहानी सुनता था तो मन एक विचित्र प्रकारके सम्मोहनसे भर जाता था। कुछ-कांटोंसे भरी हुई बजार राह तेज धूप नीली बारिश और कराकेकी सर्दीका सामना करते हुए राजकुमार अपने घोड़ेपर सवार किसीके नक्श-कदमों म मिला हुआ बढ़ता गया और तब उसकी तपस्या-निष्ठा रीझकर देवताओंने उस बारह वर्षोंके लिए उसकी प्रियतमा सौंप दी। बिछोहके दिन पहाड़-से लगते हैं और रातें नागिनकी तरह। परन्तु मिलनके दिन बीतते बीत जाते हैं। बारह वर्ष बीत गये। और बिछोहकी उस अन्तिम रातको जब हंस-परीके आँचलपर राजकुमार निद्रा-मग्न पड़ा था तभी विमान उसकी प्रियतमाको ले जानेके लिए आ पहुँचे। अंबर सोने राजकुमारको छोड़कर हंस-परी जाना नहीं चाहती थी पर देवदूतोंने दया कब सीखी। आँचल काटा गया। राजकुमार सोता ही रहा और सवेरे जब वह उठा तो उसे आँचलके उस टुकड़ेको सीनेसे लगाये बियाबान वनमें रोता फिरा। उसके दर्दभरे मनकी पतियाँ गिर गयीं पर देवताओंका हृदय न पसीजा।

मनुष्य हंस-परी यानी पक्षीसे प्रेम कैसे किया? यह प्रश्न तब भी मनमें घुमड़ता था और आज भी। पर दोनोंके रूपमें बहुत फ़र्क है। तब मुझे यह नहीं मालूम था कि हंस-परीका यह आख्यान न केवल हिन्दुस्तान में बल्कि विश्वके सभी हिस्सोंमें किसी-न-किसी रूपसे प्रचलित है। युरोपीय देशोंमें खास तौरसे उन इलाकोंमें जहाँ आज भी यायावर अथवा अर्धसभ्य कबीले रहते हैं हंस-परीकी कहानी लोक-कथाकारोंके मुँह

शिकारोंका शत्रु

भी उसी दर्द और पीड़ाके साथ सुनायी पड़ती है। श्री एन० एम० पेन्जर ने कथासरित्सागर (Ocean of the stories) के आठवें भागके परिशिष्ट-में हंस-परीके इस विश्वव्यापी आख्यानपर काफी विस्तारसे विचार किया है। हंस-परी (Swan maiden)की ये रंग-बिरंगी कहानियाँ भिन्न-भिन्न देशोंमें विविध रूपोंमें चलती हैं। इनकी घटनाओंमें पात्रोंमें वातावरणमें स्थिति-विशेषके कारण काफी अन्तर आ गया है परन्तु एक बात प्रायः सभी कहानियोंमें समान रूपसे पायी जाती है यानी मनुष्यका उड़नेवाली परी से प्रेम।

पौराणिक प्रेमाख्यानकोंमें उर्वशी और पुरूरवाकी प्रेम-कथा अपने तरहकी अकेली है। यह कहानी न केवल प्रेमकी तीव्रता बिछोहके दर्द और प्रेमास्पदके प्रति अपूर्व निष्ठाकी दृष्टिसे अनुपम है बल्कि यह पहली कहानी है जिसमें सर्वप्रथम मनुष्य और उड़नेवाली परीके प्रेमका चित्रण किया गया। इस कथाकी प्राचीनता इसी बातसे सिद्ध हो जाती है कि ऋग्वेदमें भी इसका वर्णन मिलता है। ऋग्वेद (१० ९५)में यद्यपि कथाका पूरा रूप नहीं दिखाई पड़ता परन्तु इतना संकेत अवश्य मिलता है कि राजा पुरूरवा उर्वशीसे प्रेम करता था। दोनोंमें मिलनसे पूर्व कुछ शर्तें स्वीकार की थीं जिनका पालन न हो सकनेकी वजहसे उर्वशी उसे छोड़कर चली गयी। विछोह-सन्तप्त राजा उर्वशीसे फिर लौट आनेको कहता है। इस कहानी का कुछ विकसित रूप शतपथ ब्राह्मण (११ ५ १)में प्राप्त होता है। उर्वशीके विरह-शोकसे पीड़ित राजा कुरुक्षेत्रमें पागलकी तरह घूमता रहा। वहीं उसने एक पद्म-सरोवरमें क्रीड़ा करती हुई तीन हंसनियोंको देखा। उनमें से एक उर्वशी थी और शेष थीं उसकी सहेलियाँ। उर्वशीको पहचानकर राजा उसके पास पहुँचा और उसने कातर स्वरमें कहा प्रियतमे क्या तुम्हें मुझ दुखीपर जरा भी दया नहीं आती एक बार बात तो सही? उर्वशीने उसे ममताकी भाँति प्रतार करके रोका और अपनी असमर्थता व्यक्त करके उसे लौट जानेको कहा। इन दोनों विवरणोंसे मालूम होता

है कि उर्वशी और पुरूरवाकी प्रेम-गाथा बहुत पुरानी है। पेनरका तो यहाँतक कहना है कि शायद यह कहानी इस प्रकारकी कथाओंमें सर्वाधिक पुरानी है और यूरोपीय वाङ्मयमें इसके टक्करकी दूसरी कहानी नहीं है।

उर्वशी कौन थी पुरूरवा कौन था? दोनोंने कौन-सी शर्तें स्वीकार की थी जिनके टूट जानेसे राजाको यह वियोग-दुःख भोगना पड़ा? इस प्रश्नका उत्तर इस कहानीके परवर्ती रूपोंको देखनेसे मिल सकता है। इस कथाका बहुत स्पष्ट और विकसित रूप विष्णुपुराणमें मिलता है। मित्र वरुणके शापसे दुःखित उर्वशीने मर्त्यलोकमें राजा पुरूरवाको देखा। राजाके सौन्दर्यको देखकर अप्सराको लगा कि शाप भी कभी-कभी वरदान बन जाते हैं। मृत्युलोकके मनुष्यके आकर्षणसे खिंची देवलोककी सुन्दरी उसके पास आकर खड़ी हो गयी। 'सुभ्रु!' राजा बोला 'मैं तुम्हारे इस दिव्य रूपको देखकर विह्वल होकर प्रणयकी याचना करता हूँ।' राजाको आश्वस्त करती हुई अप्सराने कहा 'राजन् मेरी कुछ शर्तें हैं यदि आप इन्हें निभा सकें तो मैं आपकी पत्नी हो सकती हूँ।' राजाने शर्तें पूछीं तो उर्वशी बोली 'आप मेरे पुत्र-रूप इन दो मेष-शिशुओंको शय्यासे अलग न कर सकेंगे। मैं कभी भी आपको नग्न न देखने पाऊँ और केवल घृत ही मेरा आहार होगा।' बहुत दिनोंके बाद उर्वशी और पुरूरवाके इस प्रणयसे खिन्न गन्धर्वोंने छल-पूर्वक एक रातको एक मेमनेका अपहरण कर लिया। उर्वशीकी कातर पुकारसे घबराया हुआ राजा यह सोचकर कि अँधेरेमें उर्वशी मुझे नग्न नहीं देख पायेगी शय्यासे उठकर गन्धर्वोंके पीछे दौड़ा तभी गन्धर्वोंने आकाशमें बिजलीकी तरह तेज रोशनी कर दी और उर्वशी राजाको नग्न देखकर गन्धर्वलोक लौट गयी। वियोग-दुःखसे सन्तप्त राजा पागलकी तरह वन-वन घूमता रहा। एक दिन उसने कुरुक्षेत्रके कमल सरोवरमें अन्य चार अप्सराओंके साथ विहार करती हुई उर्वशीको देखा। राजाने प्रणयसे दुःखी होकर

सिपरीका मेनु

उर्वशीने कहा, 'राजन्! अज्ञानियोंकी तरह आचरण न करें। मैं गर्भवती हूँ, एक वर्षके बाद आप यहीं आवें, मैं आपको पुत्र-रत्न भेंट दूँगी।' राजा प्रसन्नचित्त नगर लौटा। उर्वशीने पुरूरवाको आयु नामक बालक दिया। अनन्तर राजाने गन्धर्वोंकी कृपासे अग्निस्थालीको प्राप्त की और यज्ञ-द्वारा सदाके लिए उर्वशीको प्राप्त करनेमें सफल हुआ।

इस विवरणसे मालूम होता है कि गन्धर्व उर्वशी और पुरूरवाके विवाहके विरुद्ध थे। गन्धर्व भारतके उत्तरी प्रदेशमें खास तौरसे हिमालयकी तराईमें रहनेवाली एक जाति थी। भारतीय वाङ्मयमें इस जातिके जो उल्लेख मिलते हैं उनसे लगता है कि गन्धर्व लोग अत्यन्त वैभव-सम्पन्न और सुसंस्कृत थे। पुष्प, इत्र, कर्पूर तथा मौक्तिकका व्यापार करना इनका पेशा था। रत्नों और आभूषणोंका भी इन्हें बेहद शौक था। ये लोग रासायनिक औषधियोंके भी निर्माता थे। पुत्रदा औषधके लिए लोग इनकी उपासना करते थे। गन्धर्वोंका कबीला नृत्य और संगीतका प्रेमी था। स्त्रियाँ प्रायः रूपवती और स्वच्छन्द आचरणकी होती थीं। पर्वत प्रदेशकी गौरांग रूपवती सुसंस्कृत और कलाप्रिय नारियोंको हंसोंकी तरह कहना उचित ही है। इस प्रकारके यायावरीय जन प्रायः ही अपनी लड़कियोंकी शादी कबीलेके भीतर करना पसन्द करते हैं।

पुरूरवा और उर्वशीका प्रेम सामाजिक परम्पराका प्रथम विरोध था। दो प्रकारकी संस्कृतियोंके इस मिलनमें न जाने कितनी कड़ियाँ दीवारकी तरह सामने खड़ी होंगी। इस प्रकारके परम्पराविरोधी प्रणयकी कहानियाँ बहुत जल्द चारों तरफ फैल जाती हैं और जनताके मानसमें ये नाना रंगोंमें रँगकर विविध रूपाकार धारण कर लेती हैं। यायावरीय जन होनेके कारण गन्धर्वोंका समूह कभी एक स्थानपर नहीं रहता होगा, वरन् इस प्रकार गतिशील देखकर इन्हें 'उड़नेवाली जाति' की संज्ञा प्राप्त हो गयी। इनके रीति-रिवाज, रहन-सहनके विषयमें लोगोंके मनमें रहस्य और चमत्कार जगना स्वाभाविक था। उर्वशीके साथ जो प्रेममें थे जिन्हें यह पुरू-

की तरह प्यार करती थी। इससे इस जातिके पशतीम होनेका अनुमान किया जा सकता है।

दो विभिन्न जातिके लोगोंका मिलन तरह-तरहके अभिशापोंमें व्यक्त है। *कभी मनुष्यका प्रेम पक्षीसे कभी पशुसे और कभी जल-जीवों* (मीन-परी) से दिखाया गया। वस्तुतः इन कहानियोंमें जितना भी असंभव और अविश्वसनीय क्रिया व्यापार है वह मनुष्यकी अतिशय कल्पना प्रियताका नतीजा है। इस सत्यको छिपानेके लिए रंगीन आवरणका निर्माण मानवकी सहज प्रवृत्ति है। *जाति-मानव-समाज* (*totemic clans*) में व्यक्तियोंके नाम उनके पूजा-चिह्न (वृक्षलतादि) कभी-कभी जल-जीवों (नाग सुपर्ण) आदिके आधारपर हुआ करते थे। बादमें पौराणिक कथा-लेखकोंने इन जातियोंका वर्णन करते वक्त नामको स्थूल सत्यमें परिवर्तित कर दिया। नाग-कन्याएँ साँपकी तरह रेंगने लगीं और अप्सराएँ पक्षियोंकी तरह उड़ने लगीं।

मनुष्य और पशु-पक्षीके प्रेमपर एक दूसरी दृष्टिसे भी विचार किया जा सकता है। कहा जाता है कि प्रेम-पथ कृपाणकी धारके समान है। मनुष्यने सृष्टिके आदिसे आजतक न जाने कितने प्रयत्न किये अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने प्रणयके देवताको रिझानेके लिए सर्वस्वका उत्सर्ग कर दिया परन्तु आजतक भी वह प्रेमके पूरे रहस्यको समझ न सका। मनकी इस दिव्य भावनाके मृगागम उसने कुछ न उठा रखा फिर भी उसकी आकांक्षाएँ अतृप्त ही रहीं। दो व्यक्तियोंके इस मिलन मुहूर्तमें न केवल समाज धर्म और जातिकी रूढ़ियाँ बाधक बनीं वरन् उनके प्रेमने भी उन्हें धोखा दिया। जिस मूर्तिपर उसने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया वही पाषाणी प्रतिमा बन गयी। असफल प्रेमके गल्पमें न जाने कितने दुःखांत उसके सामने आये। जिन्दगीके

निर्मम व्यवहारोंपर वह आठ-आठ आँसू रोता रहा। प्रेमके इस विश्वासघातने उसके जीवनसे आनन्द छीन लिया। जिसे वह अपना समझता था वही पराया निकला। नारी-पुरुषके इस विषम-प्रेमने दोनोंके मनको नाना प्रकारकी प्रतिक्रियाओंसे भर दिया।

असफल प्रणयसे दुःखी होकर मनुष्य कभी भर्तृहरि या गोपीचन्दकी तरह घर-बार छोड़कर योगी बन गया कभी इस क्षोभसे वह आत्महन्ता बना। पर कई अवसरोंपर उसने इस विरूप प्रणयसे चिढ़कर अट्टहास भी लगाया। मनुष्य और पशु-पक्षीका प्रेम इसी व्यंग्यका परिणाम है। पशु और पक्षियोंसे प्रेम करके वह सन्तुष्ट हुआ। क्योंकि यह प्रतिकार था। वह कहना चाहता था कि पशुका प्रेम मनुष्यके प्रेमसे उत्तम है क्योंकि इसमें छल-छद्म नहीं है विश्वासघात नहीं है, स्वार्थ और संकुचित सीमाएँ नहीं हैं। तथाकथित असभ्य जीवन बितानेवाली कबीला जातियाँ जो सुसंस्कृत मनुष्यके समाजमें पशु समझी जाती थीं कमसे कम एक बात में बढ़ है—वह यह कि उनमें छल-कपट और मिथ्याचरण नहीं है। मैं यहाँ उदाहरणके लिए केवल एक कहानीका जिक्र करना चाहता हूँ। 'तांग कथाएँ' चीनी साहित्यकी अमूल्य निधियाँ हैं। इन कथाओंपर भारतीय कथा-साहित्यका बहुत गहरा प्रभाव है। बौद्ध और हिन्दू कथाओंके अभिप्रायों (motif) या रूढ़ियोंका इनमें प्रचुर प्रयोग मिलता है।

१९५४के चीनी साहित्यके दूसरे अंकमें कई कहानियोंके अँगरेजी अनुवाद" दिये हुए हैं। 'चेनकी प्रेम-गाथा' इनमें सर्वोत्तम कहानी है जिसमें एक पशु-परी (fox fairy)के प्रणयोत्सर्गकी मार्मिक घटनाका वर्णन है। चेनने चेंग नामक व्यक्तिसे प्रेम किया जो न तो बुद्धिमान् था न रूपवान्। चेनके रूपसे आकृष्ट होकर जाने कितने सामन्त पुत्रोंने उसे अपनाना चाहा पर वह तैयार न हुई। चेंगके सम्बन्धी और संरक्षक

बाहमें बलपूर्वक जेनको अपनी बनाना चाहा। जेन बेहोश होकर गिर पड़ी। उसने कहा 'आप धनी हैं सुन्दर हैं समाजमें आपका आदर है। जेन गरीब है, मैं ही उसका सहारा हूँ। आप क्यों हमारे इस छोटे-से घरको उजाड़ना चाहते हैं? यह आपका दिया धागा है पहनता है, इसीसे शायद आप ऐसा करनेका साहस करते हैं। काश वह अपने पैरोंपर खड़ा हो पाता।' कालान्तरमें बाढ़-जैसी कुत्तोंने उसे काटके मार डाला परन्तु पशु-मरी जेनने अपने प्रेमको कभी कलंकित न होने दिया। उसने जेनको जीनेकी शक्ति दी। अपने पैरोंपर खड़ा होनेका बल दिया। पराबलम्बितासे छुटकारा दिलाया। वह पशु थी पर उन सैकड़ों मानवियोंसे अच्छी थी जो धन-रूपसे आसक्त होकर अपनेको तथा अपने प्रेमको बेच देती हैं।

इस कथाके महत्त्वकी ओर संकेत करते हुए सम्पादकने लिखा है कि दरबारोंमें नाचने-गानेवाली लड़कियोंका जीवन अपमान और दुःखसे भरा हुआ था। संगीत और नृत्यमें पारंगत ये लड़कियाँ चतुर और सुन्दर होती थीं परन्तु समाजमें इनका आदर नहीं था। यदि ये किसी धनी-मानी व्यक्तिको ब्याहती तो उसकी पत्नी नहीं रखैल ही बनकर रहना पड़ता। जेनकी कथा इस प्रकारकी अनैतिक प्रथाका विरोध है। एक नाचने-गानेवाली लड़की भी नैतिक और सुखी जीवन व्यतीत कर सकती है। पर सच्ची जानवाली ये लड़कियाँ उच्च परिवारोंकी औरतोंसे कहीं अच्छी हैं जिनके लिए नैतिकता सम्मान या आदरका कोई महत्त्व नहीं।

पशु और मनुष्यके प्रेमकी पृष्ठभूमिमें न जाने कितना बड़ा इतिहास छिपा है। इन कथाओंके निपुण अध्ययनसे पता चलेगा कितने तत्त्व छिपे हैं जो हमें तत्कालीन समाज और उनके रीति-रिवाजको समझनेमें सहायता

--

सिल्वर्गीका सेतु

दे सकते हैं। पुरूरवा और उर्वशीकी प्रेम-कथामें पशु-तत्त्वका प्रवेश दो संस्कृतियोंके मिलनका सूचक है। यही अभिप्राय था कवि बनकर कालान्तरमें विश्वकी सहस्रों कथाओंमें तरह-तरहसे उपस्थित हुआ। मनुष्यके प्रेमको सफल-काम बनानेके लिए पशु-पक्षी न केवल घटकके रूपमें सहायक हुए बल्कि उन्होंने अपनी कायाका आवरण भी दे दिया। रत्नसेन और पद्मिनीके प्रेमको यदि हीरामन सुग्गेने साकार किया तो दूसरी ओर जाने कितने मुग्ध प्रेमियोंको अपनी कायाके परदेमें छिपाकर इस जातिके पक्षियोंने उन्हें समाज और राजदण्डसे बचाया भी। पशु उपेक्षित हैं, तिरस्कृत हैं हम उन्हें देखना तक नहीं चाहते। पर पशुने तिरस्कारके इसी आवरणमें उन प्रेमियोंको सुरक्षित रखा जो समाजमें अपने रूढ़ि-विरोधी प्रेमके लिए अपमानित हो रहे थे। पशुने बुद्धिके ठेकेदार मनुष्यको हृदयकी शुद्धताका नया सन्देश दिया। छल छद्म कपट स्वार्थमें पड़े लोगोंके सामने पशु-समाजकी सुजनता सच्चाई और निश्छलताका प्रमाण पेश किया। उर्वशी और पुरूरवाकी प्रेम-कथा मानव-प्रेमके इसी नये अभियानका विजय-ध्वज है।



टैराकोटाका साक्ष्य

[उस दिन बुद्धपूर्णिमा थी और इसी दिन कृष्णके लीला-निकेतन गोवर्धनकी परिक्रमा होती थी। कहते हैं कि पौर्णमासी चाँदनीमें मानसी गंगामें स्नान करके गोवर्धनकी परिक्रमा करनेसे मनुष्यके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। गोवर्धनका आकर्षण अपना अपूर्व रेशमी मुलायम जाल कैसे खींच सका यह तो मुझे मालूम नहीं किन्तु मनमें कोई मनोरथ है इसे तो बहुत ढूँढनेपर भी मैं जान न सका। इसीलिए तमाम यात्रियोंको उनकी मनोकामनाकी अरण्य-यात्रापर बिदाकर मैं चुपचाप खड़ा रह गया। सबेरा हुआ तो मनने परिक्रमाके लिए नहीं आरोहणके लिए पैरोंमें गति भरी। सीधे पत्थरके सहारोंसे उसकी ओर बढ़ता जा रहा था तो सामने कुछ ऊबड़ मिट्टीकी पटरियोंको देखकर ठिठक गया। कितनी चिकनी कितनी सख्त हैं ये पटरियाँ—अजीब अभूतपूर्व 'टेराकोटा' इन पटरियों पर कुछ लिखा है यह जानकर मुझे उतना कुतूहल नहीं हुआ जितना जानकर कि यह इबारत पूरी चिट्ठी है—राजेश्वरी राधाका पत्र कृष्ण द्वैपायनके नाम। द्वापरकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नारीका पत्र उस युगके सबसे बड़े कविके नाम। क्या कहा होगा कृष्णप्रियाने उस कालजयी मनीषीको सम्बोधित करके 'एक मात्र ज्वलन्त प्रश्न'? नहीं नहीं थोड़ा रुकिए और इसे पढ़ तो लीजिए।]

पूज्य पराशरपुत्र कृष्ण द्वैपायनके चरणोंमें

बरसानेकी पापिष्ठा राधाका शतकोटि प्रणाम

आप इस पत्रको पाकर चौंकेंगे क्योंकि आपने यह सोचा भी न होगा कि बरसानेकी वह गोपी एक दिन त्रिकालदर्शी कवि मनीषी

शिल्पीका सगु

प्यारसे उनके सारे कृतित्वके लिए बधाईकेही माँगेगी। अब मैं ऐसा कुछ करनेकी इच्छासे यह पत्र नहीं लिख रही। क्योंकि मेरे लिए अपने जीवन या व्यक्तित्वका कभी कोई महत्व रहा ही कब फिर उसके लिए आपसे कोई प्रश्न करूँ ऐसा तो राधा कभी कर न पायेगी। बचपनसे आपका 'भागवत' पढ़ा रह-रह कर यह प्रश्न मेरे मनको मथता रहा है कि आपने ऐसा क्यों किया? आपने इतने विस्तृत काव्यमें एक बार भी राधाका नाम लेना आवश्यक न समझा आपने कहीं भी कृष्णानकी इन मुग्ध नारीका स्मरण न किया क्यों? क्या ऐसा करनेसे आपके लीला पुरुषोत्तमकी कीर्तिमें कोई कमी आ जाती क्या राधाका नाम भक्तिके समुज्ज्वल पृष्ठोंको धूमिल कर देता? क्या उसके नाम मात्रसे भागवत-रचनाम अर्जित आपकी दैवी-कान्तिको ठेस लग जाती? फिर क्या था ऐसा जिसने आपको 'उनकी विस्तृत लीलाओंके वर्णनमें मेरे नामको नकारनेके लिए विवश किया?

अब महाकवि मैं आपकी प्रतिभा और उन्मेषशालिनी प्रज्ञाके किंचित् भी अनादरके भावसे यह सब नहीं कह रही क्योंकि ऐसा तो वही सोचेगा जिसने आपके अमृत अक्षरोंके अनिर्वचनीय रस-ऐश्वर्यका पान न किया हो। मैं चाहूँ भी तो क्या भूल पाऊँगी कि आपने यमुनाके तटवर्ती वृन्दारण्य में पल्लवित रासका जो वर्णन किया है उसने एक बार फिर मेरे मनमें सोये कदम्बोंको झकझोर जगा दिया है। बेला चमेली और अनेक सुगन्धित पुष्पों-से आच्छादित यमुनाका वह कूल अपनी अपूर्व दिव्यतामें तरंगित हो रहा था उसी समय चन्द्रमाने प्राचीके सौभाग्यके मुखपर अपनी अमृत कोमल किरणोंसे शृंगार और रोली मल दी। आह, कैसा अलभ्य था वह चन्द्रमण्डल और कैसी अमृतपूर्ण थी वह पूर्णिमाकी रात्रि। चन्द्रमाका वह नूतन केसरके समान पीत-रक्ताभ था और कैसी अद्भुत संकोचमिश्रित अभिलाषासे चमक रहा था वह मुख। सारा वन-प्रान्त चाँदनीमें आप्लावित हो उठा कि यह बैरन मारक बंसी सारे संसारको अपनी ऐसी मार्मिक उदासीकी

समेटमें समेटती हुई झंकृत हो उठी। नृत्य और मल्हारकी सम्मत पायल बजी
हुआ उस बाँसुरीकी ध्वनिमें इस तरह विलिप्त हो गयी कि उसके मार्गोंपर
नूतकी गरमी छलछला आयी। गोपियोंने अपनी मन्द मुस्कान विकासपूर्ण
चितवन और तिरछी भौंहोंसे श्यामका सम्मान किया। और तब आरम्भ
हुआ लीला-पुरुषका वह महारास जिसकी एक-एक ध्वनि एक-एक गति
एक-एक तान इस अनादिनीन अपने हृदयमें पारसमणिकी तरह सँजोकर
रखी है। कवि हम तो उस महानिधिके अपूर्व आनन्दके भोक्ता थे अनुना
चाहें भी तो क्या कह पायेंगे किन्तु जब मैंने तुम्हारी तूलिकासे चित्रित
रासके वे मनोहर दृश्य देखे तो मेरी आँखें आँसुओंसे छलछला आयीं। सच
क्या ऐसा था सौन्दर्य उस महारासका? कहाँसे देखा था तुमने यह रास?
गुरुधन आसकी महामण्डलाकार उपपत्तिकी गुम्फनमें पुलकित उस मण्डपमें
तो एक पिपीलिका भी बिना आज्ञा प्रवेश न कर सकती थी फिर कैसे
समुपलब्ध किया था तूलिका यह अनिर्वचनीय सौन्दर्य? कहाँसे मिली थी
तुम्हें यह अव्याज-मनोहर अतलस्पर्शिनी कला-दृष्टि? आह अब मैं तुम्हारे
इन शब्दोंको पढ़ती हूँ तो रोम-रोममें वीण पंख लग जाते हैं। धरतीके
अणु-अणुमें महाकालका अदृष्ट नृत्य साकार हो उठता है।

नृत्य आरम्भ हुआ कलाइयोंके कंगन पैरोंके पायजेब और करधनी-
के छोटे-छोटे घुँघरुओंकी समवेत ध्वनिसे दिशाएँ गूँज उठीं। यमुनाकी
रमण-रेतीके बीच गौरवर्णाओंमें वलयित श्याम ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो
पीली-पीली दमकती हुई सुवर्णमणियोंके बीच नील मणि अपनी दूध प्रभासे
उद्दीप्त हो रहा हो पैरोंका लोच नमन रेशमी दुपट्टोंका तीव्र आघूर्णन
भौंहोंका सस्मित बंकिम विलास आँचलका अनायास स्खलन कानके
कुण्डलोंका इन्द्रधनुषी विलास ताल-लयकी अनुपम थिरकन। पवन
नीनेकी बूँदें कपोलपर छलछला उठीं कबरी शिथिल हो गयी नीवीकी
गाँठें खुल गयीं। अपरिमेय गतिसे नाचती हुए कृष्णके शरीरसे सटी गोपियाँ
ऐसी लगतीं कि श्यामल-काले बादलोंमें विद्युत् चित्र लहरें नाच रहीं

निम्नरीका सेतु

हों किसीकी कबरीसे गुँथे फूल बिखरकर पृथ्वीपर आ गये किसीकी मरमीसे किसीके वक्षपर लगा चन्दनका लेप छूट गया।

और इस प्रकार जब रास-लीलाके अनन्तर समूचा युवतिवृन्द थक गया क्लान्त हो गया तो उन्हें साथ लेकर यदुवेन्द्र नील यमुनामें इस तरह घुसे जैसे हथिनियोंके यूथके साथ गजराज सरोवरमें प्रवेश करता है। उनके गलेमें पड़ी हुई आपाद पद्ममाला गोपियोंके अंगोंकी रगड़से कुम्हला गयी थी जिसपर झुण्डके-झुण्ड काले भौंरे मँडरा रहे थे। वह आनन्द वह उल्लास वह आह्लाद—सब जैसे उस पूर्णिमाकी रातमें अनेक राकाएँ अपने विह्वल उन्मादको लेकर पुंजीभूत हो गयी थीं।

सच कहती हूँ कवि! मैं रासका यह चित्रण पढ़कर अपनेको धन्य मानने लगी। मुझे लगा कि मोहनके रासकी सारी मादकता तुम्हारी वाणीमें समाहित हो गयी है। कितना विशाल होगा तुम्हारा हृदय जिसमें प्रकृति-पुरुषकी विराट् लीलाका यह अतीन्द्रिय सौन्दर्य समा सका। कितनी मधुर होगी तुम्हारी कल्पनाएँ कि स्वयं सरस्वतीके मधुर स्वर तुम्हारी जिह्वाको आवास बनाकर बस गये। कितना उन्मत्त रससिक्त होगा तुम्हारा मानस कि उसमें बहुविध रंगोंके इतने भावदल एक साथ अंकुरा उठे।

किन्तु, अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्दकी यह धारा क्या एक क्षणके लिए भी तुम्हारे मनमें विगलित नहीं हुई? रह-रहकर अथाह तृष्णा-सिन्धुमें सन्तरण करती हुई तुम्हारी बुद्धि क्या एक बार भी प्रतिहत नहीं हुई? क्या वृन्दा-विपिनकी लीलाओंके समापनके समय राधाका नाम तुम्हारी जिह्वापर आकर तुम्हें अभिभूत नहीं कर गया? इसके उत्तरमें तुम चाहे जो भी कहो पर तुम्हारे मनकी पीड़ा छिपी न रह सकी। लाख चेष्टा करके भी तुम सत्यकी जलती हुई चिनगारीको पंक्तियोंकी ढेरमें छिपा न सके। मधु राका के वर्णनमें गोपियोंकी सारी कातरताका चित्रण करते समय वन-वीथिका-पर उभरे पदचिह्नोंको देखकर सहम क्यों गये कवि? रासोत्सुक गोपियोंके

सामनेसे मोहन अन्तर्धान हो गये और विरह-विकल गोपियाँ वन-लता-पल्लवसे उनका पता पूछती प्रमत्त-चेष्टाएँ करती अपने स्वमत विद्यामोंको निमज्जित करती वृन्दारण्यमें पागलकी तरह घूमती रहीं। हृदयवल्लभका यह निर्मम व्यवहार युवतियोंके हृदयको कमलिनी-वनपर गिरे करका-पातकी तरह विदीर्ण करने लगा। वे अश्रु-विगलित कण्ठसे 'हा कृष्ण हा कृष्ण !' करती हुई कुररी पक्षीकी तरह बिलखने लगीं। तभी यामुनके श्यामकुञ्जके पास शुभ्र बालुकाके वक्षपर अंकित दो जोड़ी पैरोंके चिह्न देखकर वे ठिठ गयीं। उन पदचिह्नोंमें एक तो पहचाना पद था—अंकुश वज्र और कमल की रेखाओंसे अलंकृत मोहनका किन्तु दूसरा पदचिह्न ? किसके थे वे चरण ? लघु-लघु चरण-चिह्नोंमें एड़ीका अंश अपेक्षाकृत अधिक गहरा और स्पष्ट था—नितम्बिनीकी विलम्बित गति—हाय वह अवश्य ही कोई युवती होगी गोपियोंने सोचा और प्रेम-मिश्रित ईर्ष्यासे प्रमत्त होकर वे बोल पड़ीं 'जैसे हथिनी अपने प्राणसखा गजराजके साथ गयी हो वैसे ही मदनमोहन श्यामसुन्दरके साथ उनके कन्धेपर हाथ रखकर चलनेवाली किस बड़भागिनीके ये चरण-चिह्न हैं ? आह कवि गोपियोंके इस कुतूहल-से आप कितना परेशान हुए। आपको लगा कि यही सारा रहस्य खुल न जाय। लीलापुरुषोत्तमकी एक अनामिका गोपीके साथ विशेष प्रीतिकी कहानी जन-प्रवाद बनकर वासुदेवत्वको घेर न ले इसीलिए आपने इस कुतूहलको दबानेके लिए अपनी पूरी शक्तिके साथ कुछ न बोलनेका निश्चय कर लिया किन्तु इतनी सावधानीके बाद भी आप उस सत्यको छिपा सके क्या ? अचानक आपके मुखसे निकल गया

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥
(भागवत १ ।१ ।२८)

और शायद आपको ध्यान न रहा महाकवि कि इस श्लोकके पहले शब्दमें स्वयं राधाका नाम प्रवेश कर गया। मेरे मानसकी समूची शुभ्र

५

सिहरनोंका सह

प्रीति अपनी वदान्यताकी पूर्ति लेकर उपस्थित हो गयी। आराधिकाकी पता हाथ जोड़े आपके सामने खड़ी हो गयी। मैं इतनेसे भी अपनेको कम भाग्यशालिनी नहीं मानती कि महाकविके शब्दोंमें अनायास इस तुच्छ दासीका नाम मुद्रित हो गया।

मोहनकी उन भावभरी लीलाओंकी मधुयामिनि मेरा नाम न था न सही मैंने अपनेको उनके सुखकी साझीदार माना ही कब? किन्तु महाकवि दुःख तो मेरा अपना था उसकी अभिव्यक्तिका अधिकार भी आपने क्यों छीन लिया? कृष्णके प्रति मुझ अभागिनीका प्रेम क्या इतना बड़ा गुरुतर अपराध था कि उसके लिए आँसू बहानेका भी मेरा हक न रहा। रास लीला उनके सुखकी अन्तिम परिणति थी। कौन जानता था कि उस रासकी शुभ्र उज्ज्वल चाँदनीके मुखमें मृत्युश्यामिनी अमावस्याकी काली छाया छिपी हुई है। किसे मालूम था महाकवि कि कंकणका कूजन नूपुरोंका रुनझुन मादलका मदन और करधनीका आलिंगन व्यथाकी ऐसी तान जगाने जा रहा है जिसकी साक्षी अनन्त हृदयका अणु-अणु चिरकाल तक कराहता रहेगा। कृष्णके विरह-दुःखको मन धीरे-धीरे सहता गया हृदयकी पीड़ा होंठोंमें विरह-गीत बनकर फूटने लगी। दिन तो जैसे-तैसे करके कट जाता पर अवश्य नागिनकी तरह गुंजलक मारकर बैठ जाती पर मध्यरात्रि बीतते-बीतते गोपियाँ शय्या छोड़कर उठ पड़तीं दीप जलाकर वासुदेवका पूजन करतीं घरको झाड़-बुहार कर साफ करतीं और फिर वहीं विमौन बैठ जातीं। उनकी कलाइयोंके स्वर्ण-कंगन दीपककी ज्योतिमें चमकते आभूषणों-के मणि प्रदीप्त हो उठते। कानोंके कुण्डल कुंकुम-रंगे कपोलोंपर अपनी चमकसे धूप-छाँही प्रकाशकी सृष्टि करते और उनके कण्ठसे उठे हुए विरहगीत व्रजकी गलियोंको अजीब पीड़ासे भर देते।

ऐसे ही दुःख-भरे समयमें उद्धव आये। गोपियोंके धीरजका बाँध टूट चुका था। उद्धवको देखते ही मनकी क्षोभ ग्लानि पीड़ा-व्यथा एक साथ ही बह चली। पास आये एक भ्रमरको सम्बोधित कर गोपियोंने मोहनको

क्या-क्या नहीं कहा। उन्हें कितना कपट! किसीने मधुपको मानिनी नारियोंके चरणोंपर प्रणिपात करनेका ताना दिया किसीने स्वार्थी कहा किसीने पुष्प-रस-लोभी किसीने कपट भरी मनोहर मुसकानको कोसा किसीने तिरछे नैनोंकी जादूगरीपर व्यंग्य किये। किसीने उन्हें निर्मम छली निर्मोही कहा किसीने अकृतज्ञ वाचाल और अविश्वासी उपाधि दी। पर महाकवि उस भीड़में एक ऐसी भी तो गोपी थी जिसने कुछ न कहा। क्या आपको याद न रहा कि ब्रजमें एक ऐसी संस्था भी थी जो प्रात काल उठकर दीप तो जलाती थी वासुदेवकी पूजा तो करती थी यही तो सिसकती थी पर कभी उसके होठोंपर विरह-गीतकी कड़ियाँ नहीं उठ पायीं- थी कई बार मनकी व्यथा पूरे जोरके साथ उमड़ी पर बीच होठोंपर आकर बनकर मूक गये। वह सिर्फ रोती रही सिर्फ रोती और उस दिन भी गोपियोंकी सारी आक्रोश-भरी बातोंके समाप्त हो जानेपर उसके अन्तमें जब उद्धव उन्हें समझानेके लिए बोलने चले तो उसने सिर्फ एक प्रश्न किया था। आपने वह प्रश्न तो लिया है पर प्रश्न करनेवालीका नाम नहीं लिया

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु॥

(भागवत १०।४७।२१)

'जिसके दूत मधुकर मुझे यह तो बताओ कि आर्यपुत्र मधुपुरीमें सुखसे तो हैं? क्या उन्हें नन्दबाबा यशोदामाता मित्र-सखाओंकी कभी याद आती है? क्या हम दासियोंकी भी कभी बात चलाते हैं? आह, मधुप क्या फिर कभी इस जीवनमें ऐसा अवसर आयेगा कि वे अपनी अगुरुकी गन्धसे सुवासित भुजा हमारे सिरपर रखेंगे

महाकवि क्या इस प्रसंगमें भी औरों-जैसा ही आक्रोश था क्या इसमें भी कहीं व्यंग्य था उलाहना था ताना था विश्वासघातकी बात थी। यदि

नहीं तो इस प्रश्नको भी आपने उन्हीं प्रश्नोंके साथ क्यों रख दिया। किसी ने उन्हें आयपुत्र कहा था? किसीने उनकी भुजाओंमें शान्तिदायक अगुरुकी गन्ध पायी थी? राधा उन भुजाओंको गलेमें धारण करनेकी अपेक्षा शीश पर अवश्य कन्धमें ही शान्ति पाती थी। आह महाकवि राधा उन भुजाओंमें मादक कस्तूरीकी सुगन्ध नहीं ढूँढती थी इसीलिए उसके मनसे उनके लिए उलाहनेके बोल नहीं उठे। यहाँ भी आपने राधाके कथनको अनामा ही रहने दिया। आखिर क्यों? क्या अपनी विरह-पीड़ाको कह सकनेका भी अधिकार मेरा न था?

किन्तु, मैं इससे भी दुःखी क्यों होऊँ। जिसने सम्पूर्ण तन मन प्राणको भक्ति ज्ञानकी तरह निचोड़कर उन चरणोंमें समर्पित कर दिया वह व्यक्तित्वकी सुरक्षाके नामपर यह सब कुछ क्यों चाहने लगी। मेरे मनका यह अभिप्राय बिल्कुल न था। मैं तो उनकी सुख-शान्ति और कीर्तिके लिए सब कलंक सिर-माथे लेकर अज्ञात लोकमें खो जाना चाहती हूँ। मेरे जीवनकी चरितार्थता सिर्फ इसमें थी कि मैं उनके हृदयमें नारी-समर्पणकी वह ज्योति जलाकर निर्वाणको प्राप्त हो जाऊँ जो युगों-युगों तक उनके पथका प्रकाश बनी रहे, किन्तु यह भी शायद मेरी अहम्मन्यता ही होगी। मैं ज्योति प्रकाश कुछ न बन सकी मैं तो उन पैरोंपर सेफालीके फूलकी तरह सिर्फ झड़ भर गयी। प्रकाश या ज्योति उन्होंने माना यह भी उनकी शालीनता ही थी। मेरा प्रेम यदि महासमरमें उनके शरीरका कवच भी बन सका तो मेरे लिए यही बहुत है।

दुःखी सचमुच कहो तो कवि मैं इसलिए हुई थी कि तुमने मेरे प्रेम-को गोपनीय समझा उसे छिपानेकी कोशिश की। फिर इसमें भी तुम्हें दोषी क्यों कहूँ? मैं लाख बार कहूँ भी तो क्या दुनिया मानेगी कि राधा और कृष्णका प्रेम आत्मास आत्माका मिलन था। उसमें शरीरका ऐश्वर्य नहीं हृदयका रसतत्त्व था। तुम्हारा भागवत ऐश्वर्यकी कहानी कहता है। कृष्णकी पट्ट महारानियोंके विवाहकी गाथा। रुक्मिणी और सत्यभामाके

प्रणयकी कहानी जहाँतक जिसका साथ देगी जहाँतक मनुष्यकी बुद्धि शरीर, कर्म और ऐश्वर्यकी सीमाको आखिरी मंजिल मानकर बैठ जायेगी पर जब दिव्य मानवकी महायात्रा शुरू होगी तो वह सीमा पर्याप्त नहीं प्रस्थान-शिखा बनेगी और तब मनुष्यकी मानस-यात्राका नेतृत्व करेगी प्रज्ञा। उस प्रज्ञाके लोकमें कृष्ण-प्रिया रुक्मिणी नहीं 'राधा' होगी। जीवनका चरम ऐश्वर्य नहीं आनन्द होगा "रसो वै सः"। महाकवि मैं अन्तमें एक बार फिर भागवत-जैसी अमृत-वाक्की रचनाके लिए तुम्हारा साधुवाद करती हूँ। श्रीकृष्णं शरणं मम। इति।

—राधा

०

जेहि मन पवन न संचरै

'नैतिकता ! आचार्य विरतिभैरवने होंठोंको किंचित् वक्र करके ऐसा मुँह बनाया जैसे किसी कर्मकाण्डीके सामने मद्य देते समय किसीने मदिरा का नाम लिया हो। पूर्वकी ओसकी तरह कड़े बाल हृदयकी किसी उल्लास-मयी सिहरनसे सजग हुए, मुखकोनेको अपने कड़े हाथसे दबोचते ज़ब्त सिहरकी आँखें जैसे एक अजीब विरक्ति उपेक्षा और अपनी तान्त्रिकी आन्त-रिक एहसाससे उत्पन्न प्रसन्नतासे चमक उठती हैं। विरतिभैरवकी झुर्रियों-में फँसी आँखें चमकीं 'नैतिकता पाखण्डियोंका कवच है, जनताको मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करनेवालोंका घृणित षड्यन्त्र, जिसकी ओटसे वे निर्दोष और मासूम लोगोंका शिकार करते हैं ! तुमने यह शब्द वैसे ही सीखा है जैसे चंचल शिशुको निश्चेष्ट बनानेके लिए मूढ़ माताएँ भूत-प्रेत-की बात किया करती हैं। नग्न घूमनेसे यदि मुक्ति मिले तो कुत्ते और सियार भी मुक्त हैं। मयूरपक्ष ग्रहण करनेसे ही मुक्ति मिले तो मयूर और चमरी गायें भी मुक्त हैं ! शिला चुनकर खानेसे ही मोक्ष मिलता हो तो करि और तुरंग क्यों मुक्त नहीं हैं ? राजकुमार आचार-विचार पुण्य-पापके बारेमें ये सारी मिथ्या धारणाएँ तुम्हें तुम्हारे संस्कारोंने घुट्टीमें पिलायी हैं। इसीलिए सहज जीवन तुम्हारे लिए अनैतिक है, प्रकृति तुम्हारे लिए अगम्य है, तुम मायाके मोहक आवरणमें लिपटे मर्कट हो''' ।

'किन्तु आचार्य सहज जीवनके नामपर तान्त्रिकोंने जो अत्याचार फैला रखा है, भैरवीके सम्मानके नामपर निरपराध सुन्दरियोंका अपहरण धार्मिकी प्रसन्नताके लिए निर्दोष व्यक्तियोंकी बलि जनताको त्रास देकर आतंक जमानेकी प्रक्रिया खुला व्यभिचार और नग्न मैथुन'''

'हा हा हा ! बस करो बस ! तुम्हारे सभा-पण्डित देवशर्माने जो ज्ञानका उपदेश तुम्हें दिया है उसे विदर्भनरेशके सामने कौड़ियोंके मोल क्यों लुटाते हो ? तुम अपने शुद्ध अक्खड़, तामसिक अहंकारको विराट् रूप देकर अपनेको सारे विश्वके आचरणका नियन्ता मानते हो राजकुमार, जिसकी भृकुटिकी रंचमात्र थिरकनसे शत-शत सिन्धु आलोड़ित होते हैं उसकी धाराको रोकनेका नाकाम प्रयत्न ! हा हा हा हा ! तुम सारे विश्वको सही रास्तेपर ले आओगे ? सही रास्ता यानी मौतसे विरक्ति ! तुम आपसे बस इतना ही कह सकते हो कि वह जलाना छोड़ दे क्योंकि वह पवित्र छोड़ दे। अग्निका धर्म है जलाना और चरितार्थता है प्रकाश। तुम उसके सहज धर्मको नष्ट करके प्रकाश पाना चाहते हो ! जाओ जाओ अपनी ऊँची अहारदीवारीके अन्दर बन्द उस महलमें बैठकर अपने शुद्ध हृदय कुण्ठित बहुचारी सभा-पण्डितोंकी चाटुकारिताको ज्ञानकी पराकाष्ठा समझकर यमराज बननेका ढोंग रचाओ ! यह सब तो तुम्हारी बुद्धिसे बाहरकी बात रहा।

'आचार्य ! अपमान और ग्लानिसे राजकुमारकी आँखें भर आयी पामर मनपर क्रोध नहीं स्नेह बरसाना चाहिए। क्या यह सही नहीं है कि मोक्षके प्रति इस प्रकारकी आसक्ति हम पशु-सुलभ धरातलपर उतारती है ? हमारे ऋषियों-मुनियोंने सहस्रों वर्षोंकी साधनाके बाद मनुष्यके मनसे निवृत्ति मार्गके अनुसरणके आधारपर पाशविक प्रवृत्तियोंको दूर करनेका जो प्रयत्न किया है उसे आपका सहज भाव नष्ट कर रहा है, इससे इन्द्रिय लिप्साको बढ़ावा मिल रहा है।

'राजकुमार हम अज्ञानीको उसकी विवशता मानकर क्षमा कर देते हैं पर अवसरपर ज्ञानकी ढिठाई हमसे बरदाश्त नहीं होती। जैसे लेकर आज तक आत्मनिग्रहका उपदेश दिया जा रहा है। क्या हुआ परिणाम ? तुम्हीं बताओगे ? तुम सहोगे तुम्हारे काम ? अविचारित रमणीय सुननेके अभ्यस्त ... म्हारे कान भूखके कुरूप नहीं सह सकेंगे। प्राकृत-आचरणके समय अपनी र

भौंकी एक अज्ञात ऋषिके साथ कुंजमें जाते देख ऋषि भास्क कराह उठा था युवती पत्नीको सन्तुष्ट करनेके लिए अ्यवनने साधनाका अवलेह बनाया। दम्पत्य क्रीड़ा देखकर भामर्योंकी कुल्माता काम-मोहित हुई, मातामा चिरसंचेर करके भी अवतारी ऋषि-पुत्र काम-वासनाका मस्त काट न सका। अपनी युवती कन्याकी मनसतुष्टिके लिए असुर पुरोहित शुक्राचार्यने अपने जामाताको पुत्रसे यौवनका दान माँगनेके लिए प्रेरित किया और कन्याके कमके विवक्ष मार्गपर पाराशरका ब्रह्मतेज फिसल गया। तपस्यासे जड़ीभूत शरीरवाला ऋषि शृंग नागरिकाओंके कटाक्ष-सम्मुखसे बैठकर पिता-द्वारा निर्धारित ब्रह्मचर्यकी सीमा लाँघ गया"।

'आचार्य"

'हा हा हा! मै पहलेसे जानता था राजकुमार कि तुम्हारे काम यह सब सुन न सकेंगे क्योंकि तुम उस शास्त्रको मानते हो जो विश्वका मूल धरती-में नहीं आकाशमें ढूँढ़ता है, तुम मनको वशीभूत करनेके लिए उसे बहलाना नहीं चाहते बल्कि मजबूत करना चाहते हो। मनको वशीभूत करना है तो उसे उसीपर छोड़ दो भुवनविमोहिनी प्रकृतिके जिस सूत्र अंशमें वह रमा है उसीमें रमने दो। तुम उस रोकनेकी कोशिश करोगे—ध्यान-से धारणासे समाधिसे—तो जानते हो क्या हालत होगी? बौद्ध सिद्ध सरहपादके शब्दोंमें यह आत्म-वंचना है। चित्तकी कल्पित एकाग्रता तुम्हें अपने मनसे उत्पन्न वर्गोंमें भरमाती है। आँख मूँदकर कुछ न देखनेका ढोंग करते वक्त तुम अपने चित्तसे उत्पन्न आकारको देखते हो। यह आत्म चौर्य है, कुत्सित व्यभिचार।"

'आचार्य' राजकुमार मुसकराया 'बौद्ध आपके आराध्य हैं यह जान कर प्रसन्नता हुई।"

'तुम्हारी मुसकराहट नागरिक बज्जेकी हँसी है यह मुझे मीठी लगी। मैं यहाँ विभिन्न सम्प्रदायोंके दर्शनकी व्याख्या करने नहीं बैठा हूँ। प्रश्न है केवल नैतिकता। तुम्हारी आपत्ति उन तमाम मतोंपर है जो भोगका

साधनाका अनिवार्य साधन मानते हैं। इसे भोग कहो प्रवृत्ति कहो रस-साधना कहो जो भी चाहो कह लो पर एक बात याद रखो इससे आज तक कोई बचा नहीं है। बौद्ध जैन शैव शाक्त वैष्णव कोई भी नहीं। विश्वास न हो तो 'महामुद्रोपदेश वज्रगुह्यगीति' या 'अमृतवज्रगीति' देखो। तुम्हें महामुद्राके साथ बौद्ध साधकके रमणकी साधनाका ज्ञान हो जायेगा। शाक्त और शैव तो इसके लिए बदनाम हो ही चुके हैं। पर वैष्णव क्या इससे मुक्त हैं? रस-साधनाको तो उन्होंने 'राधातत्त्व' के रूपमें पराकाष्ठा-पर पहुँचा दिया। जैन तक भी इससे बच न सके। उन्होंने भी चक्रेश्वरीकी उपासना की और संयमश्री तथा निर्वाण-कामिनीके आलिंगनके गीत गाये।

'पर परिणाम क्या हुआ जाना जाय? व्यभिचार और हीनिमतसमापत्तिको ही साधना माननेवालोंने कौन-सा ऐसा कार्य नहीं किया जो उन्हें पशु बननेसे रोक सके? इन्द्रियलिप्सा और शरीर-सुखको ही पुरुषार्थ मानना शायद बुद्धिमानी नहीं है।

'कौन कहता है कि इन्द्रिय-लिप्सा बुद्धिमानी है। पशुकी सारी प्रवृत्तियाँ मनुष्यको प्रकृतिसे दाय रूपमें मिली हैं इसीलिए तो हम कहते हैं कि जो कुछ तुम्हारा है उसे उत्सर्ग करके अपने वास्तविक स्वरूपको पहचानो। तुम यदि मनकी मूल प्रवृत्तिको ही पाप कहोगे तो आरम्भ ही गलत हो जायेगा। मन केवल वासनाके पुतलेका नाम नहीं है, वह अमृत देनेवाली सिद्ध-गुटिका भी है। चित्त वह उर्वर भूमि है जिसमें मनुष्यको महान् बनानेवाली इच्छाओंके अंकुर उगते हैं। उसे कुचल कर तुम क्या पाओगे! कुचल सकोगे भी इसमें सन्देह है। इसीलिए राजकुमार हम कहते हैं कि जिसमें तुम बंधे हो उसीको न सुलझाओ। मोतीकी माला भी मरघटके मनोंमें काँचसे अधिक कुछ नहीं होती। चाह कर भी तुम 'मैं' और 'तुम' का भेद नहीं भूल सकते। भूल सकते हो तुम? नारी और पुरुषका अन्तर क्या सदा तुम्हारे चित्तमें विक्षेप नहीं पैदा करता? और जबतक यह विक्षेप है तुम निष्काम नहीं हो सकते। कामसे दग्ध चित्त लेकर तुम सहजकी

सिद्धीके

प्राप्ति करोगे। हा हा हा! राजकुमार को 'मैं' और 'तुम' के अन्तरको भूल जाता है। मधुर और स्वस्थ जिसे सामरस्य दिखायी देता है उसके लिए नारीके अंगों और साधना-पीठमें कोई अन्तर नहीं है।

'नारी आपकी साधना-पीठ है आचार्य! पर एक क्षुद्र हृदय अबलाको पुष्पित धर्मोंसे फुसलाकर अपनी तथाकथित उपासिका साधन बनाना क्या नारीके साथ अन्याय नहीं है? महामुद्रा भैरवी प्रकृति शक्ति कन्यका आदि सम्बोधन देकर नारीको ही पवित्रतम प्रतिमूर्ति बताकर उसे मूक बनाकर अपना उल्लू सीधा कर रहा है? नैतिकतावादी शास्त्रकार या भोगवादी तान्त्रिक—!" राजकुमारने धर्मध्वजी कर्कशताको होंठोंकी कम्पनसे प्रकम्पित करते हुए कहा 'चोलीपकड़मार्गी कलुषित परिभाषाको समझनेमें नारी आज चूकी नहीं समझती पर इस आत्म-वंचनाको वह कबतक ढो सकेगी?"

"आत्म-विस्मृतिमें आत्म-वंचना बुरी नहीं है राजकुमार! 'नारी जहाँ पूजित है वहाँ देवता निवास करते हैं' यह वाक्य किसी तान्त्रिकका नहीं कहा था। तुम्हारे देवताओंके निवास वैसे ही आबाद रहे और तुम्हारी पूज्य नारी-प्रतिमाएँ पाटलिपुत्र और अन्य बड़े नगरोंमें ठोकरोंके भाव बिकती रहीं। नारीको पण्य तुम्हारी नैतिकताने बनाया। पुष्पित धर्मोंके जालमें नारीको हमने कभी नहीं बाँधा। पंचकन्याओंकी कल्पनाका ढोंग हमने नहीं किया। सतीकी मर्यादाका गुणगान हमने नहीं गाया। पातिव्रत्य-की मर्यादाको संस्थापित करनेवाली नारीकी अग्नि-परीक्षा हमने नहीं ली। स्वयंवरका अपहरण हमने नहीं किया। सुन्दरी नारीके लिए महान् युद्ध हमने नहीं ठाने। नारीको अबला बनाकर जौहरकी ज्वालाओंमें हमने नहीं झोंका। सात्म्य करनेको उसके विकासको धर्म माननेवाले धार्मिक [illegible] समर्थन हमने नहीं दी। तान्त्रिकोंने कुछ नहीं किया व्यभिचार और नग्नताको प्रश्रय दिया तो दिया पर वह तुम्हें मानना पड़ेगा कि बौद्ध भोगवादी साधकोंने नारीको शक्तिका प्रतिनिधि मानकर

[illegible]

उसे एक नयी भूमिका प्रदान की। सचेत पापाचारीको पैरोंकी धूलिसे नहीं ममकी श्रद्धासे सजीव बनाया तुमने जिसे महिला कहा था पापका सोपान कहा था पतनके रूपमें गिरानेवाली कहा था उसे विश्वविमोहिनी प्रकृतिकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति कहकर सिद्धिप्रदायिनी देवीके रूपमें हमने प्रतिष्ठित किया।

केवल कल्पना-लोकमें आचार्य! व्यभिचारसे नारी शान्तिपूर्ण नहीं शान्तिहीन होती है।

राजकुमारके तीखे शब्दोंकी झंकार अभी मन्दिरके गर्भ-गृहमें खोयी ही थी कि नर्तकी-मण्डपका मुख्य भाग कर्पूर-दीपोंकी धवल-धवल आभासे नहा उठा। अस्थि-पंजरसे बने हुए कपाल-दीपोंको अग्निपके पास रखकर एक युवतीने नर्तकीकी मूर्तिको प्रणाम किया। वास्तविक धूपकी गैरिक आभामें कर्पूरी दीप जपाकुसुमके फूलोंकी तरह लहराने लगे। अनगिनत दीपोंके कम्पमान प्रकाशमें राजकुमारने देखा एक अपूर्व सुन्दरी तप्तकाञ्चन वर्ण उन्नत प्रशस्त ललाटपर गोरोचनका भैरवी चक्र गैरिक सिन्दूरी साड़ीमें लिपटी मुक्तिकाम देहयष्टि हाथोंकी नील रक्त शिराएँ विद्युत्प्रभावाहिनी नलिकाओंकी तरह उद्भासित आरक्त नयनोंमें मदिरा रस वैसी चमक पतले होंठोंमें छिपी या चमकी तरह बंकिम आमन्त्रण भाव——

'तारा!" विरतिभैरवकी आवाजमें करुणा तृप्तिकी मुस्कराहट थी 'यहाँ आओ।

सुन्दरी विद्युद्गतिसे चलती हुई मध्य-गृहमें पहुँची। चलते समय नितम्बोंकी नसें पाटल कलीकी तरह छिटक उठतीं। 'आज्ञा दें आचार्य!"

'राजकुमार, मेरे कल्पना-लोककी यह नारी तुम्हारे सामने खड़ी है। अनन्त भोगोपकरण पुष्पित शब्दोंमें भ्रमित आत्मवञ्चनाको ढोनेवाली नारी। तुम इसका अभिगमन करोगे? तुम पुरुष हो युवा हो और यह अलौकिक साधनाका मन्दिर है, व्यभिचारका स्थान—सोचो ?'

राजकुमारके चेहरेपर दीपाधारकी छाया लोट रही थी। उसने मरकत

मुका सी स्थिर् आँखोंसे उसने युवतीके चेहरेपर देखा—न लज्जा न झिझक न डर न आक्रोश। होंठोंपर किंचित् वक्र स्मितरेखा ज़रूर थी पर उसमें उपहास है व्यंग्य है, या उपेक्षा है—यह जानना कठिन था। वह ऐसे देख रही थी जैसे माता शिशुको देखती है राजकुमारकी आँखें ज़मीनमें गड़ गयीं। उसने अबतक नारीकी आँखोंमें विवशता देखी थी समर्पण और निरीहताका भाव देखा था लज्जासे आरक्त कपोलोंपर अवसन्नताकी छाया देखी थी।

'राजकुमार तुम्हारे तामसिक अहंकारका उपमणि ज्योतिसे आ जा क्यों हो गया ? उठो—उठो करो आलिंगन ताकि तुम्हें मालूम हो जाये कि ऊर्ध्वरेतस्‌की संचित अग्निमें पार्थिव पवन जलकर क्षार कैसे होते हैं ताकि तुम जान सको कि ऊपरसे मसृण दिखायी पड़नेवाले मणिधर सर्पकी फुफकार-में ओछा कैसे टूट जाता है, ताकि तुम्हें अनुभव हो कि विद्युत्‌की धाराके संस्पर्शसे रक्तधिराएँ वशीभूत कैसे हो जाती हैं ?'

'आचार्य क्षमा करें! आज मैंने केवल जिज्ञासाके वशीभूत होकर कड़ी बातें कही थीं। अब वचनोंके द्वारा व्यभिचारको पूजित होते देख मन शंकालु हो गया था।'

'पशुसे तुम क्या आशा करते हो राजकुमार? ज्ञान केवल अधिकारी-को दिया जाता है। अज्ञानी बाह्याडम्बरको ग्रहण करते हैं वासना मयूर नहीं मयूरका भोग करता है। स्मृतिकारोंने कहा था जहाँ केवल शास्त्रके आधारसे धर्मका विचार न हो सके वहाँ 'आत्मनस्तुष्टि' को धर्म मानना क्यों कहा था ऐसा? प्रत्येक मत अधिकारीकी व्यवस्था करता है। अनधि-कारियोंके प्रवेशसे मतकी गरिमा नष्ट होती है। पात्रताके अनुसार शुद्ध जलधारासे भी हम सीमित और अनन्त फल प्राप्त करते हैं। इसके लिए किसको दोषी कहोगे? वैष्णवोंने कहा था मनुष्यके प्राप्य दो हैं—ऐश्वर्य और रस। रुक्मिणी कृष्णका ऐश्वर्य है, राधा रसतत्त्व। रुक्मिणी प्राप्त है, कर्म फल है राधा प्राप्य। तुम कर्मफलको भोगे बिना रसतत्त्वको पा नहीं

सकते। सांसारिक बन्धन तुम्हारा प्राप्त फल है, वह नहीं। पशु प्रत्येक सुन्दरीको प्राप्य मानता है, शरीर सुखको ही इष्ट मानकर पतनके गर्तमें गिरता है। रस शरीरका नहीं आत्माका धर्म है। शरीर सुखको ही इन्द्रिय भोगको ही परम सुख मानकर पशु भ्रममें भटकता है। याद रखो मनकी कामनाओंका विनाश ही महासुख है। बौद्ध सिद्धने कहा था कि जिस मनमें पवन उसकी गति नहीं होती जहाँ सूरज और चाँदका भी प्रवेश नहीं उस स्थितिमें पहुँचकर ऐ चित्त विश्राम कर।

जेहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाहि पवेस।
तहि वढ़ चित्त बिसाम करु, सरहें कहिअ उवेस॥



कइसे के लौटि आयी अम्मा हो----
अम्मा आंखि अम्मा फाटि होइयू सासू हमार----
भइया दूर गयी

मैं इस रागको सुनकर चौंक पड़ता हूँ। लाख कोशिश करनेपर भी उससे बचे पाना मुश्किल है। सारी स्मरमोहिनी मेरे मनके एक छन्नेसे टूट जाती है। भाई-बहनका स्नेह जाने किस विस्मृत युगके गहन-गह्वर इतिहासका पन्ना है यह! नये मकान बनानेके लिए नींव खोदी जा रही है। आलीशान आधुनिक ढंगके नये मकान और नींवमें यह क्या दबा है! कुदालसे टकराकर हड्डीका एक लम्बा-चौड़ा कंकाल बाहर आ गया है। जाने किस युगका अवशिष्ट अंश है यह जो सदियोंकी रेतके नीचे दबा-दबाया अभी भी बचा हुआ है।

तब क्या था क्या नहीं? समुद्र अथाह था चारों तरफ। सृष्टिमें सबसे विस्तृत अंश उसीका था। क्योंकि किसी बलवती इच्छाके वशीभूत होकर विवेक खो देनेपर भी धमीको समुद्रकी थाह न सूझी। नीले आकाश के नीचे नील जलराशिका अपार पारावार। जब लहरें उठतीं तो पृथ्वी किरणें उसपर हिरण्यगर्भका एक नया आवरण डाल देतीं और जिससे चमकमें सब कुछ सुनहरा लगता----। नील-पीत वरुण ओक। पृथ्वीपर घने जंगल थे। मनुष्य वनचरका जीवन व्यतीत करता था। तब उसकी लालसाएँ वस्त्राभरणोंके आवरणमें छिपती नहीं थीं और न उन्हें व्यक्त करनेमें वह कभी संकोचका अनुभव ही करता था। मधु वात और मधु जलके बीच पली यमी एक दिन प्रकृतिके अपरूप सौन्दर्यसे विमुग्ध किसी नयी भावनासे आक्रान्त हो उठी। उसने अपने भाई यमको 'प्राणोंका सखा' कह सम्बोधित किया और हृदयकी अन्तरतमकी तीव्र कामनासे प्रेरित होकर बोल उठे

'हे यम मैं इस विशाल समुद्रके मध्य तुमसे मिलना चाहती हूँ। तुम माताकी कोखसे उत्पन्न मेरे अग्रज सखा हो।

यह नया रत्न था। इसी कारण ऋषियोंने इसे ऋग्वेदकी मंत्र-मंजूषामें प्रतिष्ठित कर दिया।

मानवीय कल्याण सुरुचि और पवित्रताके उद्गमस्थ यमने जो अग्नि प्रज्वलित की उसने सदियोंसे हमारे मनमें व्याप्त अन्धकारको दूर किया है। इस तपश्चर्यामें तप कर यमका हृदय कुन्दनकी तरह चमक उठा। और यम-यमीसे यम-यमुना तक फैली हुई विकसित भारतीय संस्कृति साक्षी है कि यमीने यमुनाके रूपमें अपने भाईके मातृभूमिकी रक्षा करनेका अद्भुत कार्य पूरा किया। यमुनाका 'भैया दूज' इतिहासकी एक नयी घटना बन गया। यम-यमीके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धके पीछे एक निगूढ़ अर्थ छिपा है। यम तो यमीका भाई है। उसके प्रति उसके मनमें स्नेह, ममता प्रेम-का होना नैसर्गिक है। किन्तु भगिनीत्वकी परीक्षा तो दूसरोंके प्रति अर्पित सेवामें है। जो दूसरोंको अपना परिवार बना ले वही बहन है। और जो जितने बड़े समूहको अपनी निःस्वार्थ सेवा ममता और प्रेमके बन्धनमें बाँध सके वह उतनी ही महान् है। भगिनी अथवा 'सिस्टर' शब्दके पीछे अहेतुक निःस्वार्थ अभिभावनकी यही अद्भुत भावना सन्निहित है।

भारतीय पारिवारिक जीवनकी अन्तर्धारा-गुणवत्ताका अनुमान लगाना हो तो इस भगिनी अथवा बहन शब्दके व्यापक गूढ़ अर्थोंकी व्याख्या करनी है। भारतीय परिवारमें 'बहन' सेवारत है। वह मर्यादा सौन्दर्य और ऊँची प्रेम-साधनाकी जीवित प्रतिनिधि है। हो सकता है कि सृष्टिके आदिकाल-में मातृसत्ताक परिवारमें स्पर्धा और शक्ति-परीक्षाके क्षेत्रमें वह एक जय प्रतिद्वन्द्वी रही हो किन्तु सत्ताको हस्तगत करनेकी उन सारी चेष्टाओंको वह बहुत पहले छोड़ चुकी है। समाज और परिवारकी स्वस्तिके नामपर एक घरमें जन्म लेना पलना बढ़ना और फिर किसी सामाजिक नियमको मानकर दूसरे स्थानपर ब्याह कर चले जाना यह एक बहुत बड़ा बलिदान है। अपनी ममता सेवा और कर्तव्य-परायणताके बलपर दूसरे परिवारसे आदर और स्नेहमय मान पाने मात्रसे उस बलिदानका महत्त्व कम नहीं हो

क्षितीश सेन

बलिदान देनेमें बुराई क्या है ? इसलाम धर्म यदि इस देहको पाकर प्रसन्न होता है तो जनसाधारणकी भलाईके लिए उसे देनेमें क्या हर्ज है ? एक राजकुमारीको ऐसा विचार आया । कुटुम्बकी प्रजाकी और सैनिकोंकी मारकाटको रोकनेके लिए यदि कोई राजकुमारी विवाह करकर प्राण दे दे तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं फिर परधर्मी के साथ बलात्कारसे होने वाला लग्न अलग्न क्यों है ? ऐसा लग्न भी तो एक प्रकारका बलि-दान ही है' —गुजरातके सुप्रसिद्ध कथाकार रमणलाल देसाईने 'पहाड़ के फूल' उपन्यासमें आचारशक्ति बलिदानकी इन शब्दोंमें अभ्यर्थना की है ।

कल्याण और सौभाग्यकी यह पारिवारिक सौरभमय सर्वस्व बलिदान कर देनेवाली 'भगिनी' के रूपमें मूर्तिमान् हो उठी । 'सिस्टर' शब्दकी ध्वनि जो भी सुनता हो उसके मनमें विश्वव्यापी कल्याणकी एक अनुपम भावना छिपी हुई है । आज 'सिस्टर' आत्मविस्मृत मर्यादाहीन सेविका का आवरण बन गया है किन्तु आवरणकी ज्योति ही क्या उसके पवित्र भावकी अभि-व्यंजना नहीं करती ? आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि 'सिस्टर' शब्द संसारकी सभी भाषाओंमें किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान है । पुरानी अंग्रेजी-में Sweoster, डच भाषामें Zuester, जर्मनमें Schwester मध्यकालीन अंग्रेजीमें Suster स्कैण्डिनेवियनमें Systir, रूसीदेशकी भाषामें Symor लैटिनमें Soror और इस प्रकार मूल यहीं है । इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका देखिए और मूल स्पष्ट हो जायेगा । मूलमें है संस्कृत शब्द स्वसृ । जिसका अर्थ व्युत्पत्तिसे पूछिए । सु+अस् धातु अस्यते वा । सौख्यं । स्वस्ति । अर्थात् जिसके कारण कल्याण हो सौख्य हो ।

और एक दिन ऐसा भी आया कि पारिवारिक कल्याण पथ-अवरुद्ध कल्याण करनेके लिए सफल रहा । युद्ध दैवी प्रकोप समय-समयपर अपनी सारी प्रखरताके साथ उपस्थित होने लगे और इसका प्रमुख चमत्कार कल्याणकार क्रीमिया-युद्धके समय प्रकट हुआ । हजारों घायलोंकी चीत्कारसे आसमान भर गया । तत्कालीन ब्रिटिश रक्षा मन्त्री सिडनी हर्बर्ट युद्ध

जब उसके साये दीवालों पर फिसलते हैं
तब पीड़ा से व्याकुल
अनबोल घायल उसे चूमने को
करवटें बदलते हैं।

—सान्ता फिलोमीना

यह है दुखियोंका कठोर परिवार और यह है उस परिवारकी स्वामिनी जिसके बलिदानको अपनी अनन्य श्रद्धाके फूल देते हुए समावाले सिपाहियोंने सभीने एक स्वरमें पुकारा 'सिस्टर'।



चित्र मूर्ति वास्तु-वास्तु या स्थापत्य कलाओंके द्वारा अनुपम सौन्दर्य-मूर्तियों का निर्माण किया है। प्रथम उल्लासकी अवस्थामें संवेगसे चोट खाकर जो प्रथम संगीत फूटा जो प्रथम मण्डलाकार-नृत्य जन्मा जो प्रथम श्लोक अवतरित हुआ जो प्रथम रेखा गुफा-द्वारपर अंकित हुई, जो प्रथम पुष्प मनुष्यके लिए निर्मित हुई उन सबमें इसी कामशक्तिकी उत्तेजना व्याप्त थी। विश्व संस्कृति साक्षी है कि संसारका सर्वोत्तम संगीत काव्य चित्र मूर्ति वास्तु-शिल्प इसी कामशक्तिकी प्रेरणाकी ही देन है। यही कामशक्ति शिवका ताण्डव है पार्वतीका लास्य है, वेदकी ऋचा है साम है सोम है यही मन्दिरोंके गर्भगृहमें स्थापित मूर्ति है, अजन्ता एलोरा भुवनेश्वर खजुराहोके प्रस्तर इसीकी अभिनव लीलाको उत्कीर्ण किये हैं ताज इसीकी प्रतिध्वनि है, पिरामिड इसीकी गाथा है रोम और वाटेकनके भग्नावशेष इसीके प्रमाण हैं तानसेनकी रागनियोंमें बिठोवेनकी कलामें इसीका स्वर है।

किन्तु कामकी शक्ति सिर्फ ऊर्ध्वगामी ही नहीं अधोगामी भी होती है। कामशक्ति निम्न धरातलसे प्रेरित होकर वासना बनती है, ऋचाएं अश्लील साहित्य बनती हैं सोम सुरा बन जाता है, मन्दिर बनते और वेश्यालयोंका रूप ग्रहण कर लेते हैं। यह काम ऊर्ध्वमुखी प्रणयके आसनसे गिरकर ऐन्द्रिय समापत्ति में संकुचित हो जाता है स्थूल होकर विकृतिको प्राप्त होता है तब इसे काम नहीं 'अलीक काम' या बौद्ध परिभाषामें 'मिथ्या चार' कहते हैं। तब इसकी प्रक्रियामें उल्लास नहीं मद होता है राग नहीं रोग होता है, मुक्ति नहीं बन्धन होता है उत्थान नहीं पतन होता है। हमारी संस्कृतिके इतिहासमें एक ऐसा ही काल आया था जब पुजारा अब मय था। उस समय हमने घबड़ाकर अपने पतनसे व्यभिचारित होकर संसारको अनित्य कहा कामको सारे बन्धनका कारण कहा। राग तृष्णा मूर्च्छा परिग्रह गिनाया इसके रूप बताये गये। सबने इसका विरोध किया सभीने काम तृष्णाके विनाशका उपदेश दिया। मूल प्रक्रिया

शिल्पतीर्थ सेतु

जगत्में वासना (डेसर) का। अगर उठनेपर बौद्धिक धरातलपर यही इच्छाशक्ति (विल पावर) और आध्यात्मिक-जगत्में अपने ऊपर पूर्ण विजय करके पूर्ण शान्ति आनन्द अथवा मुक्तिका भाव बन जाती है। प्राण मन बुद्धि और प्रज्ञाके ये चार स्तर कामशक्तिके चार कीलमेच हैं। प्राणके लिए काम मनके लिए वासना बुद्धिके लिए इच्छा और प्रज्ञाके लिए आनन्दका प्रेम मुमिचार है। कामशक्तिकी ऊर्ध्वमुखी यात्रा इन्हीं चारों स्तरोंका एकके-बाद-एक सोपान है। जिस व्यक्तिके पास जितनी यही मूल है वासना है, इच्छा है आनन्द-कामना है, वह उतना ही अधिक शक्तिसम्पन्न है किन्तु यह शक्ति सम्यक् संयम और महत् उद्देश्यसे परिचालित होनेपर ही जीवके भव-जगत्में पूर्णकाम आत्माका अवतार करा सकती है। एकत्र उद्देश्य या शुभ आकांक्षाएं इसे उतने ही वेगसे अधोमुखी भी बना सकती हैं।

कामशक्तिके चारों स्तरोंपर उसकी ऊर्ध्वमुखी साधनका मन्त्र है उत्सर्ग। प्रत्येक प्रक्रियामें अहंका विसर्जन। जैसा कि श्री अरविन्द कहते हैं 'वासना (Desire) दिव्यजीवनके सिद्धान्तकी क्रियाशक्ति है जो व्यक्तिको आत्मनिष्ठ बनाती है। इसे जड़ 'इन्द्रिया' के नामपर झुठलानेका अर्थ है दिव्य जीवनकी प्रक्रियाको झुठलाना। इच्छा या वासनाका तिरोधान तभी होगा जब यह अनन्त सत्ताकी इच्छा बन जायेगी और जब यह उस अनन्त सर्वनिष्ठ आनन्दमें अपनी शाश्वत अनन्त पूर्णकामताको प्राप्त कर लेगी। तबतक निचले स्तरकी बुभुक्षासे लेकर ऊपरके स्तरकी आनन्दपूर्ण पूर्णकामता तक पारस्परिक सहयोग और उत्सर्गके आधार रहे यदि लेना होगा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको निम्न उच्चको उच्च निम्नको मनुष्य ईश्वरको और ईश्वर मनुष्यको अपना सर्वस्व देता है ताकि प्रत्येक दूसरेके द्वारा पूर्णकाम बन सके। बुभुक्षाका प्रथम विनियोग समन्वयमें मृत्युका अमृतमें लय हो जाना चाहिए क्योंकि यही सृष्टिके मूलमें निहित नारायण अथवा कामशक्तिकी मांग है यही इसकी साधकता है और यही

१९२५–२६ की रिपोर्टमें स्पष्ट संकेत किया है कि कृष्णलीलाकी प्राचीनतम मूर्तियाँ गोवर्धन-धारणकी हैं। एक मथुरामें मिली है दूसरी महाबलिपुरम्में जो दोनों चौथी शतीके पूर्वकी हैं। गोवर्धन-पूजा हमारे जनताके इतिहासका क्रान्तिकारी मोड़ है, भयपूजाके स्थानपर प्रीतिपूजा। हम क्यों इन्द्रकी पूजा करें जो अपने वज्रपातसे हमें निरन्तर ध्वस्त करता है। हम उसके स्थानपर गोकुलको धान देनेवाले मंगलकारी गोवर्धनकी क्यों न पूजें और तब आया अन्नकूट। भय और अन्न। भय और प्रीति। इन्द्र और अन्नकूट। सम्पूर्ण गोकुल एक विराट् कुटुम्बमें बदल गया सभी परिवारोंका जैसे एकीकरण हो गया। माखनचोरी इसी आत्मविस्तारका सरस रूप है। इसी आत्मविस्तारसे कालिय दमन दावानल शोषण वत्सासुर वृषासुर धेनुकासुर-वध मुष्टिकोंके दमनकी प्रतिरोधी नयी कथाएँ अंकित की। यह सब दुग्ध और मक्खन होनेवाले चरागाहोंपर विजयका गान है। मधुमय कोषमें समर्पणका महाशक्तिके अवतरणकी अलौकिक गाथा।

रास मनोमय कोषमें भावनाकी अल्पना है, चन्दन-चर्चित अल्पना जिसकी रेखाएँ एक ओर सौन्दर्यको मूर्त करती हैं तो दूसरी ओर आनन्दके उच्छल नृत्यका संयोजन। रास नारी और पुरुषके महामिलनका विराट् पर्व है। राम और रसिकी अनन्त अपूर्ण प्रणय कल्पना है। सृष्टिके अणु-अणुमें प्रवहमान युग्मदीप्त मिथुनशक्तिका यह महाकाव्य है, जिसमें अपूर्व बिम्ब छन्द और रूपका भावलोक मूर्तिमान् हो उठा है। कामवासनाका उन्नयन दो रूपोंमें सम्भव है। उसे सौन्दर्यविधायिनी कलाओंमें सन्निहित करके भाव परिवर्तन (Transformation)-द्वारा अथवा उसके व्यापक सामाजिक प्रकाशन-द्वारा। कामवासनाकी उत्तेजना मात्र पर्दा प्रथाके कारण तरह तरहसे विकृत हुआ करती है। ई० ३०० के 'माएन्स आफ् हरपूर' में मैं एक 'कुमिक्स टू एण्ड ह्यूमारो' शीर्षक एक निबन्ध है जिसमें उन्होंने लिखा है कि जिस समाजमें जितना अधिक पर्दा है, प्रेम छिपानेका रिवाज है उसमें कामवासना उतनी ही प्रबल है। चीनियोंके कवितालोकमें जो प्राय: काम

सम्मुख जो भी समस्याएँ खड़ी थीं उन सबमें उन्होंने इतनी कुशलतासे अपना कर्तव्य पूरा किया कि वे गीतोपदेशके मामले विख्यात हो गये। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि कर्तव्य-बोधसे विमुख होकर मनके अन्य क्षेत्रमें अडीभूत हो जाना योग नहीं है 'योगः कर्मसु कौशलम्'। इसी कारण महाभारतको मैं उनके जीवनका तीसरा मोड़ मानता हूँ जहाँ बुद्धिके साथ मैं आत्मगत बोधमें महाप्रतिभाका विकास होता है। यहाँ आकर आप व्यक्तिके सभी विकार आत्मगत पूर्णकामताके समुद्रमें विलीन हो जाते हैं। कृष्णने अपने जीवनके इस अंशके अनुभवोंके निचोड़को एक श्लोकमें यों रख दिया

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥
(गीता २।७०)

चारों ओरके प्रवाहोंके आनेसे भी जिस समुद्रकी मर्यादा भंग नहीं होती ऐसे समुद्रमें जिस प्रकार सब प्रकारका जल समा जाता है वैसे ही जिस व्यक्तिके चित्तमें सभी प्रकारके विषय उसकी शान्ति-भंग किये बिना ही प्रवेश करते हैं वही शान्तिको प्राप्त करता है।

महाभारत कृष्णकी इसी शान्ति-साधनाका कसौटी है, जहाँ उन्होंने अपने शरीरको सभी प्रकारके आक्रमणोंके सम्मुख रख दिया पर शस्त्र नहीं उठाया। क्यों? ऐसी शक्ति ऐसा विश्वास उनके चित्तमें कहाँसे आया? यह विश्वास और यह शक्ति कृष्णमुखी प्रभावने प्रदान की या उनके जीवनका अभेद्य कवच बन सका। और यह सब कुछ उन्होंने विश्वमानवताको अपना दाय समझ कर दिया लोकसंग्रहके लिए वत्सलताकी भावनासे।

सभी प्रकारके संघर्षोंके भीतर अपने कर्तव्यको पूरा करनेके बाद 'द्वारका-निवास' समुद्रके बीच लहरोंके भीतर, पर लहरोंसे परेकी स्थिति उनके जीवनकी अन्तिम स्थिति है। द्वारका कृष्णकी स्थितप्रज्ञताका आधान है जहाँके सभी वास जैसे एक ऐसे व्यक्ति-द्वारा होते रहते हैं जिसमें न

गन्धसे अपावित गंगा नहीं है न आपकी काशी महाकालके त्रिशूलपर स्थित पृथ्वी नगरी।"

महर्षी नन्दीश्वरजीकी टकराहटकी तरह अन्तर्धान कर अन्नपूर्णा अट्टहास कर उठी। लम्बे-लम्बे भूषणोंसे भरे ओठोंमें लगभगाती यह हँसी बहुत देर तक ध्यमान-तटपर टकराती रही।

'ऊपरसे देखनेपर काशी ऐसी ही लगेगी जैसी तुमने उसे देखा है पर काशी इन पत्थरोंसे बने जर्जर गलि नगरका नाम नहीं है। काशी उस प्रभासका आधार है जो इस भ्रष्टाचार-कलंकित भूमाण्डल बाहरी कामार्ग आत्मान बाला जाता है। काशी भारतीय इतिहासका वह दर्पण है जिसमें विभिन्न संस्कृतियोंके अन्तरावलम्बनकी पावन-कथा है। काशी भारतीय मनीषाकी गर्भसंभूता है, काशी युगप्रवर्तक एकताकापूर्णपूजा मानस-मन्दिर है इसे बाहरसे नहीं प्रमाणसे नहीं तिरस्कारसे नहीं भीतरसे श्रद्धासे प्रेमसे देखो तो यह काशी तुम्हारे सामने अपना गोपनीय रहस्य प्रकट कर देगी जो सहस्रों वर्षोंसे हमारी मानवताकी मनोरम छवियोंको सँजोती रही है—'

'अब शंकरेश्वर कृपालु हों महाभैरव कुण्डसे पीड़ित हृदयमें विश्वास की आशा तुम्हारी कृपासे ही प्रकट हो सकती है' महाकालकी अद्भुत शक्ति-ज्योतिस्न चकाचौंध नेत्र तुम्हारी कृपा-दृष्टिसे ही उन्मीलित हो सकते हैं।

अन्नपूर्णा धीरेसे विलीन हो गयी। काशी रात्रिकी कालिमामें गंगा-की धूमिल धारा मन्थर गतिसे बह रही थी। मुझे लगा जैसे चमत्कार कहीं यह उजली धारा रूपमयी होकर एक पारदर्शी शिखिमायकी रूप मगन हो गयी है। उस धूँधले परदेपर नई तरहकी आकृतियाँ उभर रही थीं। वृषभ जटाजूट भभिमा भव सोम ललाट। समवेत कण्ठसे ऋचाएँ ध्वनियाँ *नक्तमुत उपसः मधु। पार्थिवं रजः मधुमत्। वाता मधु ऋतायते। सिन्धवः मधु क्षरन्ति। न ओषधीः माध्वीः सन्तु'* तथा मधुर है, धूलिकण मधुर है पवन मधुर गतिसे बह रहा है। नदियाँ मधुका स्राव कर

गयी है उसी प्रकार तुम्हारा व्यवहार भी। सभामें उपस्थित ब्राह्मण बालाकिका प्रतिवाद करनेके लिए सक्रोध भावसे उठे पर अजातशत्रुने उन्हें समझाकर शान्त कर दिया।

'अपराध क्षमा करें ब्रह्मन्, आपने अपनी उपस्थितिसे अजातशत्रुको कृतार्थ किया है। आज्ञा करें आप अजातशत्रु आपके सम्मानके लिए सब प्रकारसे प्रस्तुत है।'

'राजन्, मैं तुम्हारे लिए ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँगा।' दृप्त नेत्रोंसे सभासद् विद्वानोंकी ओर देखते हुए गार्ग्य बालाकिने कहा।

'कृतार्थ हुआ ब्रह्मन् आपने जनकके समान ही मेरा भी गौरव बढ़ाया। मैं आपको एक सहस्र गौएँ प्रदान करता हूँ और आपका उपदेश सुनने के लिए प्रस्तुत हूँ।'

इतना सुनकर अर्द्ध-विस्फारित नयनोंसे सभा-पण्डितोंको तुच्छवत् समझता गार्ग्य बालाकि बोला — 'राजन्, यह जो सूर्यमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, मैं इसीकी ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करता हूँ।'

'नहीं नहीं आप उसकी चर्चा न करें वह तो सभी भूतोंका मस्तक और दीप्तिमान् पुरुष है। उसकी उपासनासे मनुष्य दीप्तिमान् बनता है, पर ब्रह्म नहीं है।'

'तो वह जो चन्द्रमण्डलका प्रभावान पुरुष है वही ब्रह्म है।'

'नहीं नहीं ब्रह्मन्, वह तो वनस्पतियोंका स्वामी चन्द्रमा है पर, वह ब्रह्म नहीं है।'

'तो वह जो मेघमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है वही ब्रह्म है।'

'नहीं नहीं वह तो तेजकी आत्मा है ब्रह्म नहीं है।'

'तो वह जो अग्निमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है वही ब्रह्म है।'

'नहीं ब्राह्मन्, वह तो सबका देवता है पर ब्रह्म नहीं है।'

लज्जासे गार्ग्य चुप हो गया। उसके तप्त श्वासोंसे उमड़ हृदयकी आत्ममण्डित वैभवकी आभा बुझकर धूमिल हो गयी। प्रसन्न सभामें अरहन

उग्निसप लग्गमतिहृत्य सुदारुणन्तो
धावन्ति योजन पर्ण सुलि मासपन्नं।
इन्दी मिर्तसत मनो चितचा मुनिन्दो
तं तेजसा मणग्गु ते जयमङ्गलानि॥

कामकायकी विभीषिकाओंमें प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। मूक पशुओंके रक्तसे मानवताका आँगन शोक-मोहित हो गया। शोक-ऊँचके विवेकने हमारे विवेकको कुहासमय कर दिया। कर्मके मिथ्या बाह्य-दंभने प्रजा उत्पन्न की। धर्मान्ध अंगुलिमालकी तरह नर-कंकालकी माला पहनकर अलौकिक आतंक उत्पन्न करने लगे। माया-मोह और स्वार्थकी मार-सेना नहमो करोंमें मनुष्य लेकर नीति और सत्यका तिरस्कार करने लगी। पशुमात्रके बलिदानसे पशुपतिका आसन डोल उठा। महाकालका विपुल दोलायमान हो उठा। और तब जिसने वैर घृणा जुगुप्सा विचारिता हिंसा और क्रूरता को अपनी मैत्री करुणा समता दया और अहिंसासे उपशमित कर दिया वे ही मुनीन्द्र तुम्हारा मंगल करें—

'कौन कहता है कि इसने उरुवेलाके बोधिवृक्षके नीचे ज्ञानकी प्राप्ति की है? तपश्चर्याके बीच अनित्य शरीरकी रक्षाके लोभमें जिसने अन्न ग्रहण किया वह तपस्वी नहीं हो सकता। संसारके सब जनोंको भ्रममें डालकर यह महात्मा बन बैठे ब्रह्मचारी पण्डितोंको यह कभी भी क्षम नहीं सकता। पूछो पूछो इस शाक्यपुत्र सिद्धार्थसे कि क्या इसने ब्राह्मणका सत्कार किया है?" ब्रह्मचारी कामदानी सभी एकत्र होकर शाक्यपुत्रके लिए बुद्धको ललकारने लगे।

सुनो सुनो माताकी योनिसे उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको मैं ब्राह्मण नहीं मानता हूँ। ब्राह्मण वह है जो लोभहीन और अपरिग्रही है। न जटासे न गोत्रसे न जन्मसे ब्राह्मण ब्राह्मण होता है जिसमें सत्य है शुचिता है वही ब्राह्मण ब्राह्मण है।

'यह सब प्रलाप सुनने हम यहाँ नहीं आये। जबतक तू यह नहीं

सिम्हरोचन मह

टिड्डी दलकी तरह उत्तरापथके गिरि-संकटोंसे रास्ता बनाती शस्य-श्यामला भारतभूमिपर टूट पड़ी। मगर हूणोंके आक्रमणसे मथुरा तकके प्रदेश पहले ही जलकर क्षार हो चुके थे। बैक्ट्रिया और अफगानिस्तानके भग्न स्तूप खण्डहरोंमे इन विनाशकारियोंकी नृशंस गाथा आज भी अंकित है।[1] हूणोंके बाद निरन्तर आक्रमणोंका क्रम जारी रहा। छठी सदीमें अरबमें जिस नये धर्मका उदय हुआ वह वैयक्तिक स्वतन्त्रतामें नहीं बलपूर्वक धर्म-परिवर्तनमें विश्वास करता था। मुहम्मदकी वाणीका लौह-प्रचार विधर्मी-हत्याके साथ पश्चिममें यूरोप और पूर्वमें भारतकी ओर अग्रसर हुआ। बर्बर सेनाएँ हाथमें खड्ग और जलती उल्काएँ लेकर उत्तर भारतमें फैलने लगीं।

ऊर्ध्वमुखी आहुतीके निमिषमात्रमें यह सब कुछ बीते दिनकी घटना विश्वासोंकी तरह उजड़ता गया। काशीका आदि विश्वेश्वर मन्दिर टूट चुका था। कुतुबुद्दीनकी विजय निशानियोंका मिथ-कूपक बन गयी। जिसके नामपर हिन्दू और मुसलमानोंका संघर्ष रक्तोंसे मिलकर नगर-गाँवकी गलियों तक आ गया। काशीका शान्त वातावरण धर्मोके कलुषित धूमसे भर गया। मनुष्यकी मेधा अर्जित प्रतिभाका कोई मूल्य न था। पण्डितों और मौलवियोंने मिथ्या कर्मकाण्डके घेरेमें जकड़कर दुखी और दीन जनताको पीसना शुरू कर दिया।

कबीर कँवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिट गयी बाजे अनहद तूर॥
कबीर बादल प्रेम का हम पै बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराइ॥
कबीर गुरु गाजे मिल्यो, रहि गये आँटि लाग।
पाति पाँति कुल सब मिटा नाँव धरागे कौण॥

---

1 Messerius और Berthood के शोधोंसे पता चलता है कि पाँचवीं सदीसे दसवीं तक किस प्रकार स्थलसे मथुरा तक हूणों-की बर्बर सेना अविच्छिन्नरूपसे अपना सर्वविनाश करती रही है।

शासनमें कोई भी ऐसा न बचा जो सबसे ऊपर सिर निकाल सके जो मुगलोंके गर्जन-तर्जनको वक्र भृकुटिसे देख सके। पर उस महामनुष्य प्रताप कमलके फूलकी तरह खिले रहे। दुरसाजीके शब्दोंमें

अकबर समँद अथाह तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिह माँह पोयण फूल प्रतापसी॥
अकबरिये इक बार, दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार, रहियो राण प्रतापसी॥
सुख हित स्याल समाज, हिन्दू अकबर वस हुआ।
रोसीलो मृगराज पजै न राण प्रतापसी॥

प्रतापकी देशभक्ति त्याग सहनशीलता भी सुषुप्त देशमें नव स्फूर्तिका संचार न कर सकी क्योंकि लोगोंको विश्वास ही नहीं होता था कि इतनी बड़ी दुर्दम साम्राज्य-सत्ताके विरुद्ध साधनहीन सहायहीन प्रताप टिक कर पायेंगे। तो क्या हम ऐसे संकटके समय हाथपर-हाथ रख बैठ जाना चाहिए? क्या हमें अपनी राजलक्ष्मीके अपहरणको मौन भावसे सह जाना होगा? क्या न्याय और सत्यकी कभी विजय न होगी? क्या सामरिक वैभव और शारीरिक शक्तिके बलपर हमेशा अत्याचारीकी ही जीत होती रहेगी—ये प्रश्न थे उस घोर तमिस्रापूर्ण महारात्रिके जिसे चीरकर वाणीमें एक नयी ज्योति इन प्रश्नोंका समाधान लेकर उपस्थित हुई

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लम्पट पर धन पर दारा॥
मानहि मातु पिता नहि देवा।
साधुन सन करवावहि सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानहु निसिचर सम प्रानी॥
अतिसय देखि धरम की ग्लानी।
परम सभीत धरा अकुलानी॥

सिरसींघ गुप्त

श्मशान

सँगमूसाकी तरह काले शरीरपर अजगरकी लकड़ियोंकी तरह ऐंठे हुए कंटकित बाल डरावने बीभत्स मुख चिताकी आग लपलपाती लपटकी तरह रक्तवर्णी जीभ पसरे पक्के दाँतोंकी सड़ी बोसीदी जैसे हड्डियाँ चिटक रही हों—यही हूँ मैं। मैं यानी श्मशान जिसे एक क्षण सामने खड़ा देख तुम्हारी आँखें झप जाती हैं रोंगटे खड़े हो जाते हैं शरीरसे पसीना छूटने लगता है मगर क्यों? ऐसा ही था तो फिर बनाया क्यों मेरा नाम क्यों घृणा छेदा छिन्नभिन्न? हजारों मासूम बच्चोंकी तरह काली इस सख्त छातीमें यह आग छिपाये हूँ जिसमें पहाड़ गिरें तो जलकर खाक बन जायें किन्तु मैंने क्या कभी उफ तक की? यह जलतेको देख कभी गुनगुना सुनानेकी लौ लगायी या हाथ पसारकर कभी दयाकी भीख माँगी? विपदावाले चेहरेपर उभारकर सहानुभूतिके लिए झोली मैंने नहीं फैलायी··· कभी नहीं यह तो तुम करते हो···तुम यानी आदमी यानी इन्सान। जिसे अपनी इज्जत पर मद है, बड़प्पनका मोह है, जो अपनेको संसार भरका नियामक मानता है और जो मेरी इन लपटोंकी भयानक ज्वालामें सूखे तिनकेकी तरह जल-कर खाक हो जाता है। लेकिन सुनो डरो नहीं मेरे पास आओ। एक बार मुझे नजदीकसे देखो उस आँखसे जिससे तुम अपने बूढ़े बापको देखते हो या जन्म देनेवाली माँको देखते हो। विश्वास मानो मैं सच कहता हूँ भीतर से तमकी तरह जलनेवाली यह छाती तुम्हें शीतल मालूम होगी—एकदम शीतल आँधी पीपलकी तरह जाओ, और लोरियोंसे भरी हुई। हाँ ठीक इस पीपलकी जड़में बैठ जाओ। अरे नहीं यह भूतोंके कंकालकी आवाज नहीं है, ये तो इस बूढ़े पीपलके पत्ते हिल रहे हैं। ऊपर क्या देखते हो?

मिन्दीप मधु

श्मशान

संन्यासीकी तरह काले शरीरपर अधजली लकड़ियोंकी तरह ऐंठे हु कंटकित बाल डरावने बीभत्स मुख चिताकी लाल लपलपाती लपटकी तरह रक्तवर्णी जीभ चलते वक्त पैरोंकी नसें खोपड़ी पीस हड्डियाँ चिटख रही हों—यही हूँ मैं। मैं यानी श्मशान जिसे एक बार सामने खड़ा देख तुम्हारी आँखें मुँद जाती हैं रोंगटे खड़े हो जाते हैं शरीरसे पसीना छूटने लगता है—मगर क्यों? ऐसा ही था तो फिर बनाया क्यों मेरा नाम क्यों पूछा मुझे छेड़ा किसलिए? हजारों शास्त्र तवेकी तरह काली इन सत्य कथाओंमें मेरा नाम छिपाते हैं जिसमें पहाड़ गिरें तो पककर खाक बन जायें किन्तु मैंने क्या कभी उफ तक की? राह चलतेको देख कभी दुखड़ा सुनानेको दौड़ लगायी या हाथ पसारकर कभी दयाकी भीख माँगी? विपन्नताको चेहरेपर उभारकर सहानुभूतिके लिए झोली मैंने नहीं फैलायी...... कभी नहीं यह तो तुम करते हो—तुम यानी आदमी यानी इनसान। जिसे अपनी इज्जत पर गर्व है बड़प्पनका मोह है, जो अपनेको संसार भरका नियामक मानता है और जो मेरी इस ज्वालाकी भयानक ज्वालामें धुएँ तिनकेकी तरह जल-कर खाक हो जाता है। लेकिन सुनो डरो नहीं मेरे पास आओ। एक बार मुझे नजदीकसे देखो उस आँखसे जिससे तुम अपने बूढ़े बापको देखते हो या जन्म देनेवाली माँको देखते हो। विश्वास मानो मैं सच कहता हूँ भीतर मैं तवेकी तरह जलनेवाली यह छाती तुम्हें शीतल मालूम होगी—एकदम शीतल माँकी गोदकी तरह ठण्डी और लोरियोंसे भरी हुई। हाँ ठीक उस पीपलकी जड़में बैठ जाओ। अरे नहीं यह मुर्दोंके कंकालकी आवाज नहीं है, ये तो उस बूढ़े पीपलके पत्ते हिल रहे हैं। ऊपर क्या देखते हो?

शिलरीक्ष मनु

मात्राका पालन करनेके लिए तैयार हो जाती' 'आश्चर्य कर रहे हो ! सोचते होगे क्या मनुष्य मन्त्र-शक्ति है, मरेको जिला सकनेकी ऐसी क्षमता है तुम्हारी जातिमें नहीं न ... 'किन्तु यह सब बकवास है। तुमने बाल्मीकेके मरनको बात तो जरूर सुनी होगी फिर भयको जीतकर मनुष्य शक्ति प्राप्त करनेमें आश्चर्य क्यों ? केवल इच्छाशक्ति है यह जिसे प्रकृतिको विजित करके कोई भी पा सकता है किन्तु तुम्हारी जातिके वे महापण्डितवाले कापालिक पशुसे भी बुरे थे। उनकी साधना पलनका साधन थी। सुन्दरियोंका अपहरण प्रतिद्वन्दी यशस्वी कापालिककी हत्या अथवा अपनी शक्तिका आतंक फैलानेके लिए किसी निर्दोष बालककी बलि यही इन सबके काम थे। एक दिन विजित प्रकृतिने उनसे बदला लिया। मुरदे को उन्मुखी बनानेवाले वे इच्छाचारी कापालिक जीवित लाशकी तरह अधोमुखी हो गये। खैर छोड़ो भी यह सब बातें मैं क्यों तुम्हें बीते दिन की बातें बताने लगा। यह सब तो पूरा पोथा है कहने लगूँ तो अन्त न मिले। फिर किसे इतना अवकाश है आज कि पुराने जमानेकी बातें सुनकर मस्त आया करे। पर करूँ क्या ? यह याद ही ऐसी है कि हृदयको कोंचा जाती है केवल एक इसीके लिए सारे अतीतको जगाया करता हूँ। सोचता हूँ कहीं निगमकी मंजिला यह हीरा न खो जाये। समयकी काई इस लौ को ढँक न ले। सुना यह राजा था उसके जागनेसे पहले ही पृथ्वी मुद्राङ्कित हो चुकी थी। भाग्यकी विडम्बना ही कहो इसे पर मैं तो इसे अपनी किस्मतकी जीत कहता हूँ। यह दिन रात मेरे पास रहने लगा राजा श्मशानका पहरेदार हो गया। एक दिन उसकी रानी अपने इकलौते बेटेकी लाश लिये इसी जगह आयी थी कफनतक बेटेके शवपर पूरा कफन भी न था। पतिको देख रानी फूट-फूट कर रो उठी 'नाथ'...

'यह भ्रम है देवी मैं तुम्हारा नाथ नहीं इस श्मशानका पहरेदार

ह.... यह बोला नियमके मुताबिक तुम्हारे लड़केके कफनका एक

हिस्सा.... कर जाये न बोल सका परवश तुला थी।

उसके बोझको मैंने अपने बोझकी तरह समझा है, उसके आहत मनकी महत्ता है, उसके आँसुओंको मोतीकी तरह सँजोया है। तुम क्या समझते हो कि निःसहाय विधवाके इकलौते बेटेकी अकाल मृत्युपर मुझे दुःख नहीं होता? अभी चिताकी राखपर उसे सिर धुनते देख मेरा रोम-रोम भयके मारे काँप उठता है। अभी ब्याही पत्नीकी मृत्युपर जार-जार आँसू बहाते नौजवानके दुःखको मैं समझता हूँ। दफ्तरपर पड़े थाने-थानेके मुहताज अपाहिज भिखमंगेकी भाँति आपको अँधी फाड़ आँखें सम्भावित लाशको सियार कुछ नोच-नोचकर खाते वह सब कुछ देखता हूँ। सामाजिक मर्यादाकी रक्षाके लिए, बिन ब्याही बेटीके हत्यारे बापकी आत्महत्याकी कहानियाँ सुनता हूँ। बापको तकलीफोंसे मुक्त करनेके लिए रस्सीसे लटक जानेवाली बेटीकी लाश भी मुझ बनानेके पास ही आती है।

'कभी-कभी ऐसे भी मौके आते हैं जब मुझे नहीं मालूम होता कि रोऊँ या हँसूँ। सारी सम्पत्तिके लोभमें अपने स्वर्गीय भाईके एक मात्र किशोर पुत्रको जहर खिलानेवाला छोटा भाई ऐसा दयनीय चेहरा बनाये आता है, जैसे भतीजेके मरनेका दुःख वह सह न सकेगा। बिलख-बिलखकर भगवान्‌को कोसता है। भाईको छीन लिया अब इस छोटी निशानीको भी छीन-कर तुझे क्या मिला? तू इतना निर्दयी कबसे हो गया? वह अपनी छाती पीटकर कलेजेको बना देता है। लाश गोदमें लेकर सम्भालनी मन मारा चाहता है। अपनी कम सुन्दर या असुन्दर बीबीका गला घोंटकर नयी शादीको इच्छुक युवक मृत शरीरको कन्धेपर लादे आँसुओंकी गंगा बहाने लगता है। अपने अनन्य प्रेमका इजहार देकर सारी दुनियाको अपने धोखेसे अभिभूत कर देता है। लाशपर सिर पीट-पीट कर बहुत चीखता है। पत्नी चिताकी राखको आँसुओंसे भिगो देता है। अकर्मण्य पिता अपने बच्चोंकी जिन्दगी सुधारनेके लिए, कम्पनीवालोंको धोखा देकर आत्महत्या कर लेता है। यह सब तुम्हारी जाति ही करती है, पृथ्वीकी सर्वश्रेष्ठ जाति। किन्तु इन सबोंको मैं नादान भूल या अपराध समझकर क्षमा कर देता हूँ

तरह हँसता था बिना दाँतके शिशुकी तरह पवित्र और निश्छल। उसके लिए सब बराबर था मान-अपमान यश-अपयश। तुमने उसे गोली मार दी थी क्योंकि तुम उसके सत्यसे डरते थे क्योंकि उसकी मासूम आँखें सदा तुम्हारे हृदयमें छिपे कालिखको घूरती रहती थीं — उसकी चिता भी जली थी। मैं इस घटनाका भी साक्षी हूँ। तुम्हारी भाँति उस मनुष्यकी हड्डियों और अध-जले फूलोंके लिए मेरी आँखें होड़ लग गयी थी। उसकी चिताके चन्द फूल ही तो मुझे मिले थे जो उस चक्रवर्ती राजाकी कहानीकी तरह पवित्र हैं। सच कहता हूँ, उस दिन मुझे ऐसा लगा कि मृत्यु किसी सुदीर्घ जीवनका अन्त नहीं होती। वह दिन तो उसके यशस्वी जीवनका अन्तिम था उसकी कीर्तिके विस्तार का नया दिन।

'तुम्हारी भाँति न केवल अपने भीतर ही टुकड़े-टुकड़ेमें बँटी है बल्कि उसने मुझ अकिंचनको इस बड़ी धरतीको भी बेटोंमें बाँट दिया है। जहाँ केवल राजाके घर बनेंगे पण्डितके आशीर्वाद। जहाँ भूखे नहीं रह सकेंगे। सच कहता हूँ यह सब देखकर जी होता है एक लम्बी करवट लूँ जिसमें जिन्दे लोग घासकी तरह सहमकर गिर पड़ें। मैं विकृत क्षुद्र हृदयके लोग जिन्हें अपनी चोटीके समान चुटियापर इतना गर्व है! चोंचेकी तरह अपनी कायाको उठाये डोलनेको ही बुद्धिमानी समझते हैं। न तो वे सम्मान कुछ पाते हैं न मृत्युसे सीखते हैं। राजाओंके शव देखे हैं तुमने। अब तो खैर वह चलन ही नहीं रही फिर भी। काठकी लम्बी मंजूषा मानो चाँदीसे मढ़ी हुई, ऊपर बेशकीमती पीताम्बरका आवरण हजारों मालाएँ। अगुरुके धुएँसे पंक्तियोंमें सुगन्ध छा जाती। पालकी ढोनों के साथ रुपये-पैसे ऐसे लुटाये जाते मानो आजसे संसारमें दरिद्रता ही न रहेगी। सड़कके किनारे डोम मेहतर भंगी आदि हजारोंकी संख्यामें मधुमक्खियोंकी तरह भनभनाते चूहोंकी तरह दौड़ते धान भूस लग पैसोंमें बँधी थालें उछालकर वे पैसोंकी लालचमें मुट्ठीभर धन बटोरते

लाल इमारतोंका नगर

विरहिणी मारवणीने सावनके दिनोंमें काले बादलोंकी छाँहमें सोयी हुई हरी भीगी धरती और घर-घरमें आनन्दोत्सव मनाती ग्रामीण युवतियोंको देख कर कहा था कि मारू देश सावनमें ही सबसे अधिक सुहावना मालूम होता है

धर नीली, धण पूगरी धरि गहगही गमारि।
मारूदेस सुहामणउ सावन साम्हीहार॥

किन्तु उस सुहाने सावनमें उस हठपाली विरह-दग्धाका 'साम्हीहार' न आया मानो सीपके भीतरसे ढलकते हुए उसको आँसू देनेवाली वे रातें जिनमें दीनदयालके अपार नीले समुद्रके भीतर श्वेत सद सीपियोंके सम्पुटमें पड़ी हुई स्वाति-बूंदें तक जम कर मोती हो जाती हैं। आप चाहें विरहिणी मारवणीके इस देशमें एक बार भी न विहरें किन्तु सीप, समुद्र, स्वाति-बूंद और मोतीके संसारमें तो आप अवश्य ही जायेंगे। ऐसी ही रातोंमें उस यदि मगन ढोलामरूकी सुराखाम सन्देश हो गया तो क्या आश्चर्य?

जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समुद्राँ माँहि।
तिण रिति ढोला आवेउ, हम बीमार न जाइ॥

कमस्सा पुकरा यानुर्ष नवमी राजस्थाने बने-बिगड़े दुनिया भरके बरन और सजकर गर्व हुए पर मारवाड़की ये सुधारमण्डित रातें तनिक भी रुपी-बैरागिका स्वीकार न कर सकीं। और आप्पके पथ प्रदर्शनकी क्या कहें जिसने इस भयंकर ऋतुमें सुबह साढ़े-तीन बजे मुझे जयपुरके जंक्शन पर उतार दिया। आगरासे आनेवाली इस गाड़ीमें रास्ते-भर कम डिब्बे और ठसाठस भरे यात्रियोंकी सोनीसी नरपीस ऊपर कण्ठीधम कमरेका था

घोटियाका हुआ तो मोटी तिजोरीका अनुमान सहज सम्भाव्य है।
सीमामेरी गेट। एक किलेसे दूसरे किलेमें प्रवेश करनेका द्वार। जो अबतक देखा है वही अच्छा है, या जो आ रहा है वह? सीमामेरी गेट समाधिपुरुषकी तरह अटल खड़ा दोनों तरफको युगियाको निःस्पृहकी तरह निहारता रहता है। उसके लिए यह और वह दोनों अपना है, वह सबका स्वागत करता है, एक ही तरहसे। हजारोंकी संख्यामें भूरे मटमैले पंखवाले कबूतर जो इस विशाल द्वारके छज्जोंमें वातायनोंमें गुम्बजकी दरारों और कोनोंमें अपना घर किये हैं एक स्वरके साथ फड़फड़ाकर उड़ते हैं रंगीन पतंगोंकी तरह नीले आसमानमें छिपे हुए वे पहेल हर सब पाने किस सूतकी तासपसे खिंचकर इसी छज्जेपर लौट आते हैं सुबह-शाम छोरे-छोरियाँ चावल छींट जाते हैं चने डाल जाते हैं और सीमामेरी गेटके ये स्वागत-पक्षी अपनी मस्तानी गुटरगूँसे इस गुमनाम कन्धेको आबाद किये रहते हैं।

चौड़ा रास्ता। जी हाँ यह जयपुरका मशहूर चौराहा है। यहाँ नदी की विशाल धाराकी तरह चौड़ी-चौड़ी चार सड़कें मिलती हैं बीचमें एक बहुत बड़ा गुम्बजसे ढका हुआ चबूतरा है जो चारों सड़कोंको अपनी अपनी सीमाओंमें बाँधता है। मिलनको नियमित बनानेवाले इस टापूनुमा चबूतरे पर अजीबो-गरीब किस्मके लोग जमे हुए दिखायी पड़ते हैं। एक तरफ फूल-फूलविक्रेता आसमानी कम औरतें बनाता। पक्की गुड कासी-कासी मालिनें चाहे रंगोंमें रंगी ओढ़नियाँ और छींटके लहँगोंमें लिपटी। मेरेके फूलोंकी टोकरियाँ सजाता थी। पीले-लाल रंगके गेंदेके फूलोंकी मीठी गन्धकी इस चहारदीवारीके अप्रतिम इस्तेमाल बनानेके लिए बैठे नारंगोंकी लम्बी कतार मालाको आकार देती कैंचियोंकी चहक रास्तार सिरपर मोतीम किनारे धूरेकी रंगत देखते आगे बढ़िए तो हथेलियाँ अँगूठे आदिके छापोंके काले भूरे नक्शे फैलाये पण्डितके लिए छोटी स्लेट और पेन्सिल लिये मोटे गुमगुम

चित्रलेख...

छिपके हुए। प्राचीन ज़मानेमें एक दिन ऐसे ही जब काली-काली मुडौल पहाड़ीके ऊपर आकाशी बादल घुमड़ आये थे, एक बनेही चम्पई देखकर चिल्लाता हुआ भागा—बापरे, जो बादल इतने बड़े पहाड़को निगल जानेके लिए भूखा बढ़ा आ रहा है वह भला मेरी छोटी-सी 'घन' को कैसे छोड़ेगा

अम्मा लग्गा डूँगरिहिं, पहिउ रडन्तउ जाइ।
जे एहा गिरि गिलण मणु सा कि धणहं धणाइं॥

किन्तु यह है छोटी डूँगरी जिसकी नुकीली चोटी आसमानको भेदती सीना ताने खड़ी है। और बेचारे बादल खिसककर नीचे खिसक गये हैं। इस सौन्दर्य-प्रमत्ता डूँगरीपर साधारण जनका आरोहण वर्ज्य है।

मुझे निराश-सा देखकर रिक्शावाला बोला, 'हम तो पहले कहा कि ऊपर जाना मुश्किल है। महारानी बाबा नाराज़ है।'

मैं रिक्शेवालेकी ओर देखता रह गया, कुछ बोल न सका। उसकी आवाज़में हमारी पराजयका कोई दुःख न था, वही निश्छल कोमल बातें। उसने कभी सोचा भी न होगा कि इस डूँगरीपर 'रानी' का महल क्यों है, दीपकी ज्योतिकाकी तरह अंकोंमें खड़ी इन कमाची डूँगरीके मस्तकपर बेमतीका यह राजमुकुट क्यों? पेड़ों झुरमुटोंके बीचसे थोड़ा ऊपर उठकर अपने अस्तित्वका बोध करनेवाली इन पहाड़ीके लिए इतनी बड़ी सज़ा किसलिए? हज़ारों पहाड़ियोंकी तरह इसकी लहरपर झंडीके फहराते हुए चोटीकी ऊँचाईसे एक क्षण विश्राम करनेकी तक़दीर भी इससे क्यों छीन ली गयी? मेरा मन न जाने क्यों बड़ा खिन्न हो गया था। रिक्शेपर बैठकर चला तो मनमें जाने कितना उफान भरा था। प्रकृतिके अलंघ्य दुर्गम महलोंमें मानवीय चरणकी प्रथम छाप-को कौन पुरस्कृत न करेगा। आकाश-स्पर्शी हिमगिरिश्रेणी उत्तुंग चोटियोंपर मानवीय साहसकी पताकाएँ किसके मनमें गर्वकी भावना नहीं भरती? किन्तु जाने क्यों इस छोटी-सी डूँगरीके सिरपर रखे ये वैभव

और अप्रतिहत गति होनेकी यह मानवी कल्पना भी अजीब है।

बनारसवालोंको जयपुरमें जिस समस बड़ी विकटरूप सामना करना पड़ता है, वह पानकी दुकान ढूँढना। ऐसा नहीं कि दुकानें नहीं मिलती हैं पर मन माफिक दुकान पाना काफ़ी मुश्किल है। लम्बे-चौड़े तश्तेपर पचासों पत्ते सूख रहे हैं जिनपर चूने और कत्थेका लेप लगा है। ये पूरे पत्ते बिलकुल कलई कागजकी तरह मालूम होते हैं। कई बार मनको समझाया भाई देश-देशकी चाल है, किन्तु यह समझ न सका और उस कागजी पानको मुँहसे लगाना गवारा न हुआ। एक दुकानमें आपे पत्तेपर कत्था चूना लगानेको कहा तो पनवाड़ीने घूरकर देखा परम्परा-विरोधीको सामने खड़ा देख यह बात सुन रहा ही था कि मैंने सम्भव-भर सुपारीकी जगह दो-एक टुकड़े रखनेको कहकर दूसरा आक्रमण किया। चिढ़कर बोला 'पत्तो खाओ हैं क्या?' मैं क्या उत्तर देता दुश्मनी मना की नौकरी पुटकी रोकी किसी प्रकार पानका रूप बना तो एक नया क़िस्सा आ गया। एक सज्जन जम पगड़ीधारी धार्मिक पनवाड़ीसे बोले 'भाई कीमाम है?'

पनवाड़ीके मत्थेकी छाप कण्ठी बाहकी गरदनको घुमाकर आँखें लाल कर बोला 'साहब यह हिन्दूकी दुकान है?'

ग्राहक सकपकाया तबतक उनके स्वरमें पनवाड़ी बड़बड़ाया पान की दुकानपर कबाब शबाब माँग रहे हैं ओछा।

अब समझमें जो बात आयी तो हँसी रोकना मुश्किल हो गया हालांकि मैं इस घटनासे जयपुरके सभी पनवाड़ियोंकी बुद्धिपर अविश्वासका कारण नहीं समझता।

दूसरे दिन आठ बजे होटलके दरवाजेपर आया तो वैसा ही कर परिचित दिखलायी पड़ा है वही पगड़ी वही चेचकी चेहरा वही कौतुक आँखें।

बोला 'आमेर जाना है न सेठजी।'

लिए इस कल्पनामें भी भयका आधिपत्य छा गया।

मैं घूमते-घूमते थक चुका था। एक खेजड़ीके पेड़के पास आकर खड़ा हो गया। सूखा-सूखा यह पेड़, इससे अधिक चारों ओर और कुछ भी न था। पीला दग्ध-भग्न यह देश! मैं मन मारे इस उजाड़ प्रान्तको देखता रहा। मुझे लगा जैसे भग्न मन्दिरकी किसी स्तम्भसे कोई सिद्ध कापालिक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया है। लम्बी श्वेत दाढ़ी, कुंचित भौंहें, सहसा आकर बोला— 'क्यों बेटे, क्या देखता है। इधर आ, इधर। हाँ और तेरी तो कुण्डलिनी जाग्रत है।' और फिर वह अपने अँगूठेसे मेरी भौंहोंके बीचके भागको छू देता है।

'देखता हूँ कि आकाश काले-काले बादलोंसे भर गया है। बादलोंसे मानो पिघल स्वर्णकी वृष्टि हो रही है, उसके आगे छोटे-छोटे श्याम मंजु पक्षियोंका दल खेलता हुआ भागा जा रहा है।

हवाके थपेड़ोंसे जयपुरके गुलाबी मकानोंपर लगे बदरंग अँगरेजी पोस्टर फड़फड़ा कर उड़ रहे हैं, सड़कें जलवृष्टिसे धुल कर साफ हो गयी हैं, अपाहिजोंका कहीं नामोनिशान नहीं, मोती डूँगरीकी छातीपर-से रानी साके महलको उतार कर किसीने जमीनपर रख दिया है, आमेरके मनसादेव कितने सुन्दर और प्रसन्न लगते हैं। खेजड़ीके झुरमुटे पड़ मुसकरा रहे हैं।

'क्या यह सच है बाबा?' मैं पूछता हूँ।

'भविष्य बतायेगा!' बाबाका कंकाल पिघलकर धूपमें विलीन हो जाता है।

o

वाले हरएक दर्शकको इस विचित्र संयोगपर आश्चर्य-स्तब्ध रह जाना पड़ता है।

जयपुरमें रहते एक पखवारा बिता चुका था। गुलाबी इमारतोंके इस नगरका बाज़ारपथ पैरोंमें रेशमी डोरियोंकी तरह लिपट जाता। काफ़ी चौड़ी सड़कें, चौड़ा रास्ता, सामानेरी पोल, त्रिपोलिया बाज़ार, हवा महल, अल्बर्ट हॉल सभी कुछ एक अजीब स्वप्नकारकी मानसिक चित्रशाला आमूर्तन थे, इसे छोड़कर या इससे बचाकर अलग हट जाना बड़ा मुश्किल मालूम होता। कमल-कोषमें बन्द विमुग्ध मधुकरके मकरन्द-पानको आनन्दकी परिणति बतानेवाले तो बहुत मिलेंगे किन्तु समय-यमराजके क्रूर जबड़ोंमें पिसे जानेवाले इस भौंरेकी बुद्धिपर कौन तरस खाता है? इसीलिए एक दिन ब्राह्म मुहूर्तमें जब कि मनुष्यकी बुद्धि मोह-ग्रसित नहीं रहती मैंने इस नगरको विदाई दी क्योंकि बिछुड़कर जाता हुआ तो नगर ही था मैं नहीं।

जयपुर जंक्शनसे फुलेरामें आकर फिर गाड़ी बदलनी होती है। मुझे मेड़तारोड जाना था। जहाँसे कुछ मील दूर मेड़ता नामका शहर है, मीराका नगर। अपनी निगूढ़ प्रेम भावनासे जिसने सदियों तक भारतके शुष्क मनको स्नेह-सुधासे प्लावित किया उसके नगरमें कुछ रस अवश्य होगा इसका अनुमान तो सहज था किन्तु फुलेरा स्टेशनके बाद राजस्थानके जिस रूपका दर्शन हुआ उनसे कर्मठ जनताके प्रति श्रद्धाकी भावना तो पैदा हो सकती है किन्तु नयन-सुखके लोभी जनको कुछ विरक्तिका बोध भी हो तो आश्चर्य नहीं। हाँ फुलेरासे केवल एक घण्टेके रास्तेके बाद ही साँभर की मधु मनोरम झील दिखायी पड़ती है जो अपनी तरलता, स्वच्छता और सरसतासे इस उजाड़ मरुभूमिमें अभिनव रसका संचार करती है।

कभी-कभी अकेले यात्राका भी एक अजीब आनन्द होता है। कोई पास न रहनेपर भी मन-मन मौन नहीं रहता। और ऐसी अवस्थामें मानसिक थकान और बेसब्री लम्बी यात्राओंमें काफ़ी राहत मालूम होती है।

एक सरदारजी बोले। वे मेरे साथ जयपुरसे आ रहे थे और डिब्बेमें बैठे बैठे बातचीतके सिलसिलेमें यह जान चुके थे कि मैं मेरठ जा रहा हूँ। सरदारजीकी ओर मैंने ध्यान नहीं दिया था, ऐसी बात नहीं। सफ़ेद कुरता पाजामा और सफ़ेद पगड़ीमें लिपटे दाढ़ीवाले सरदारजीको बार मैं कई बार देख चुका था, सोचा भी था कि इतने मासूम और नरम सरदार आज तक मुझे क्यों नहीं दिखायी पड़े। गोरीली दाढ़ी, भूरी आँखें और रंगीन डोरकी पगड़ीवाले दूर सरदारके अन्दर अकड़की अवश्यम्भावी स्थितिको मैं सहज गुण मानता आया हूँ। कहीं ऐसे बेचारे सरदार भी होंगे इसकी कल्पना तक ही मुझे न थी। वे रास्ते-भर 'पाकिस्तान' को गाली देते आ रहे थे, घनघोर गाली, किन्तु क्या बनावट थी उस चेहरेकी कि गालीको गाली समझनेकी भी न करता। जैसे कोई बच्चा मिट्टीके टूटे खिलौनोंसे बात कर रहा हो कि तुम इतनी जल्दी टूट क्यों गये या कि कोई थका-हारा राही बबूलके पत्ते पूछता हो कि तुम बबूलके पेड़ क्यों हो, बरगदके क्यों न हुए। वे अकसर जयपुरमें मौसम 'बिजनस' के सिलसिलेमें आया करते।

'गाड़ीका तो कोई टेम नहीं जी, गड्डी आयगी तो जब आनी आपके साथ मैं भी शीश देख लूँ', सरदारजीकी बातपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। लगा कि इस चेहरेवाला व्यक्ति यदि शीश देखनेकी बात करे तो कोई हर्ज नहीं। उसके अन्दर प्रकृतिकी इस तरह वस्तुको देखनेकी इच्छा उतना स्वाभाविक है। उनके तीन भाई बीबी एक बच्ची सभी पाकिस्तान के अग्निकाण्डको भेंट चढ़ चुके थे सारा परिवार लपटोंमें आमूल स्वाहा हो चुका था।

'शीश बड़ा है जी', एक ऊँचे टीलेपर चढ़कर सरदारजी बोले 'भगवान्‌का बनाया शीशा, शीश आये हैं जी, सच्चा वाकया इतना बड़ा शीश', सरदारजीकी आँखोंसे चमकीली लहरोंसी रेखाएँ कौंधती तरह

यावत्प्रयामि दमनस्य यशसे मदुर्ग
विद्याधरः प्रसादितास्ति शक्नवरा मे ।
अस्यामरण्यभुवि तस्य यशो तपोमि
देवी हिमाद्रितनया नयनाभिरामम् ॥

विद्याधरने साथ कहा — राजन्, मैं तुम्हें वर देता हूँ। एक तुच्छ भेंट स्वीकार करो। अपनी सेनाको यहीं छोड़ दो। प्रातःकाल अपना कुम्भ पृथ्वीमें गाड़कर तुम अपनी राजधानीकी ओर घोड़ा दौड़ाते चले जाओ। खबरदार पीछे मुड़कर मत देखना। कुम्भ गाड़कर ज्यों ही राजा चला कि वहीं लहराता विशाल सिन्धु उमड़ पड़ा। आकाशचुम्बी लहरें उठने लगीं। लहरोंकी गर्जना सुनकर राजा अपनेको रोक न सका और विद्याधरकी चेतावनीके बावजूद पीछे देखने लगा — लहरें शान्त हो गयीं। विद्याधरने कहा 'राजन्, आपने अच्छा नहीं किया। खैर अब यह एक झील मात्र रह जायगा। चन्द्रवंशियोंका कुरुक्षेत्र केवल पाँच योजनको पवित्र करता है उसका पुण्य केवल लोकान्तर फल प्रदान करता है किन्तु सूर्यवंशियोंकी यह झील दोनों लोकोंमें फल प्रदान करती'

इन्दोः कुलस्य यशसां वसतिः कुरूणां
स्थानं पवित्रयति योजनपञ्चकं तत् ।
लोकान्तरे फलति तत्सरसा मनेन
लोकद्वयेऽपि भविता सवितुस्तु वंशः ॥

जाहिर है कि यदि अचानक भी इस झीलको विद्याधरकी मानसके लिए निर्मित हुआ था। पर उसमें एक बात और बड़े मज़ेकी है। वह यह कि यह झील इस लोकमें भी 'फल देती' यानी मगर तब भी इस झीलमें बनाया जाता था।

'भीड़ स्वाभाविक है' या, सरदारजी कहने लगे, 'पानीको देखकर आदमी रूमानी हो ही जाता है।'

मैं आश्चर्यसे सरदारजीकी ओर देखता रह गया किन्तु वहाँ ठी भी

विभिन्न प्रकारका सम्मोहन बिखेरकर लहरोंमें बहता हुआ चला जा रहा था। इसमें बचकर आ सकना मुश्किल था। सरदारजी अपने कामका हुर्ज ही रहा था मुझे चाकी पकड़नी थी।

सरदारजी लौटें मैंने कहा।

'एक मिनिट जी' मैंने देखा सरदार पहाड़ी ढोकेमें तेजीके साथ नीचे उतर रहा है मैं भी साथ-साथ उसके पास तक पहुँचा। सरदारजीने एक चुल्लू पानी लिया और उसे मुँहमें डालते हुए बोले दूसरासे हाथका समझ पाके कौन किसे याद नहीं करे है जी। एक बूँद भी खूनमें रहना तो भूलनेमें कुछ मुश्किल होगी।

मैं सरदारकी ओर देखता रहा वह चुपचाप हँस रहा था।



विचित्र प्रकारका सम्मोहन बिखेरकर लहरोंमें बहता हुआ चला जा रहा था। इसमें बचकर जा सकना मुश्किल था। सरदारको अपने कामका हर्ष हो रहा था मुझे जल्दी पकड़नी थी।

"सरदारजी लौटें" मैंने कहा।

"एक मिनिट जी" मैंने देखा सरदार पहाड़ी ढोकेसे तेजीके साथ नीचे उतर रहा है मैं भी साथ-साथ उसके पास तक पहुँचा। सरदारजीने एक चुल्लू पानी लिया और उसे मुँहमें डालते हुए बोले — दूसरोंके हाथका नमक उतार कौन लिये जाय नहीं कर है जी। एक बूँद भी खूनमें रहेगा तो मुझमेंभी कुछ मुश्किल होगी।

मैं सरदारकी ओर देखता रहा वह चुपचाप हँस रहा था।



सुदूर भविष्यमें खोया है जिसकी सुनहरी कल्पना उस बूढ़ी आँखोंमें हमेशा छायी रही। भविष्यमें जब निरालाके बारेमें प्रचलित कथाएँ मूक हो जायेंगी संस्मरण विस्मृतिके गर्भमें खो जायेंगे मित्रोंके 'आत्मो-वाक्य' निस्तेज हो चलेंगे तब आनेवाली पीढ़ी निरालाके विषयमें सिर्फ निरालासे पूछेगी उनकी कृतियोंसे पूछेगी उस महाकविके व्यक्तित्वके विषयमें उसके बाह्य वरणके विषयमें उसके जीवनके संघर्षमय क्षणोंके विषयमें विरोधीसे विरोधी परिस्थितियोंमें भी निर्बाध दीपककी तरह अविराम जलती हुई उस काव्य-साधनाके विषयमें। और मुझे यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि भविष्यके इन प्रश्नोंका जितना स्पष्ट उत्तर निरालाकी कृतियाँ देंगी उतना स्पष्ट शायद ही उनके समसामयिक या बादके किसी कविकी कृतियाँ दे सकें।

निरालाका व्यक्तित्व अपनी तरहका अकेला है। वैसे तो प्रत्येक कवि और साहित्यकारके लिए विशिष्ट व्यक्तित्व अनिवार्यतः अपेक्षित है किन्तु विशिष्टता विचित्रतामें नहीं है जैसा बहुत-से लोग समझते हैं। प्रत्येक कवि व्यक्तित्वकी विशिष्टताका एक ही मानदण्ड है और वह है उसके आत्मविसर्जनकी शक्ति। विशिष्टता इस बातमें है कि किसी कविने अपने साधनाग्रस्त व्यक्तित्वको अपने बाहरकी वस्तुओंमें किस हद तक विसर्जित कर दिया। हर बड़ा कवि अपने व्यक्तित्वको अपने अहंको जीवनमें विसर्जित करके ही बड़ा हुआ है। अहंकी विकृति और अनुचित विस्फीति कविको हमेशा ही लघु बनाती है। इसी वस्तुकी ओर लक्ष्य करके टी एस इलियटने लिखा है कि 'कविके लिए अपने व्यक्तित्वकी बहुमूल्य से-बहुमूल्य वस्तुका त्याग अनिवार्य है। वह अपना सब कुछ अपनी बहुमूल्यतर कलाके लिए विसर्जित कर देता है। कविकी गति सततके आत्म-त्यागमें है सतत आत्मविसर्जनमें है। किन्तु इस प्रकार आत्मत्याग और आत्मविसर्जन वे ही कर सकते हैं जिनके पास महत् व्यक्तित्व हो। तटस्थ भावसे अलग अहंको हृदयमें डुबा देना उतनी आसान बात नहीं है। इस

शत शुद्ध बोध—सूक्ष्म से सूक्ष्म मन का विवेक
जिन में है क्षात्र धर्म का धृतपूर्णाभिषेक
जो हुए प्रजापतियों के संयम से रक्षित
वे शर हो गये आज रणमें श्रीहत खण्डित

रामका जनक सम्पूर्ण विश्वको विजित करनेवाले बाणोंके श्रीहत हो जानेका उतना अफसोस नहीं है जितना उस 'दैवी विधान' पर कि शक्ति अधर्मरत रावणके साथ है।

जिस सहज रूप में संयत हो जानकी-प्राण
बोले, आया न समझ में यह दैवी विधान
रावण अधर्मरत भी अपना मैं हुआ अपर
यह रहा शक्ति का खेल समर शंकर-शंकर।

पर राम जीवनकी और भाग्यकी यह विडम्बना देखकर भी विचलित न हुए। उन्होंने अपनी आराध्या शक्तिके सम्मुख शिरच्छिन्न कर देनेका संकल्प किया। किन्तु इस महत् संकल्पने भी उन्हें सिद्धिकी ओर नहीं प्रवृत्त किया…पूजाके अन्तिम दिन इन्दीवर अपहृत हो गये…रामका सारा विवेक काँप उठा

धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध

और राम जिन्होंने कभी न दैन्य जाना न पलायन जाना अपने नयनके सम्मुख आत्मत्यागका निश्चित करनेको उद्यत हुए…शक्ति सिद्ध हो गयी। यह है रामकी शक्तिपूजा! किन्तु निरालाकी सरस्वती-पूजा तो इससे भी विकट है इससे भी अधिक संकट और जोखिम भरी हुई क्योंकि रामके लिए जो दैवी विधान था वह निरालाके लिए हमारे समाजकी विषमता थी। रामको एक दैवी शक्तिके सामने समर्पित रहना था पर निरालाको सत्य शिव और सुन्दरके उस रूपके प्रति जो जीवनमें नाना प्रकारकी उभरती हुई स्थितियोंमें अभिव्यक्ति पाता है। इसमें नहीं

देखना चाहता। सरोजकी असामयिक मृत्युके बाद कवि अपनी स्थिति पर बार-बार सोचता है। अपने सारे कर्मको वह निरर्थक मानता है और अपने पितृत्वको निष्फल। वह जानता है कि धन कैसे कमाया जाता है किन्तु ग़रीब देशमें किसी-न-किसीके मुखका अन्न छीनकर ही धन आता है इसलिए कविको दूसरेके मुखका ग्रास छीन लेनेकी अपेक्षा आँसुओंमें ही अपने ग्लानि-भरे मुखको बिम्बित देख लेना ज्यादा पसन्द आया

धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर सदा रहा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर
शुचिते पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख
क्षीण का न छीना कभी अन्न
मैं लख न सका वे दृग विपन्न
अपने आँसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने मुख चित

चिरविजयी वर्षोंके पीड़ित और लांछित होनेका यही रोष निराला की क्या इन पंक्तियोंमें ध्वनित नहीं होता

यह हिन्दी का स्नेहोपहार
यह नहीं हार मेरी भास्वर
यह रत्नहार लोकोत्तर वर
अन्यथा जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य कला कौशल प्रबुद्ध

यह है 'सरोज-स्मृति' जिसने कवि मनके 'वज्रकठोर' को पूरी तरह कमजोर कर दिया। इस व्यापक कर्मविपाककी इस पृष्ठभूमिमें निरालाकी कविताओंका विश्लेषण किया जाये तो उनके काव्यमें विद्रोही स्वरका सही भाव समझा जा सकता है। यह ग्लानि और खिन्नताका भाव ही उनके काव्यमें नाना रूपोंमें प्रस्फुटित हुआ है। कभी आक्रोश बनकर, कभी अत्याचारोंके लिए दुस्सह ललकार बनकर, कभी पाखण्डियोंके विरुद्ध आतंककारी हुंकार बनकर। कभी यह भाव 'बादल राग' में अन्धकारको मिटानेवाली शक्तियोंके लिए आवाहन बनकर आता है, कभी अंगना अंगमें छिपाये भी आतप अकम्प कोपनवाले वणिक-शासकोंके विरुद्ध प्रलयंकरका विप्लव-गान बनकर आता है। यह भाव आरम्भमें जिस रूपमें आये इसके मूलमें आत्म-करुणाका स्वर ही था हो। 'वनबेला' में इस स्वरका ही विगलन है। 'वनबेला' जैसे कविके जीवनका नया प्रभात बनकर खिल उठी है। कवि सोचता है कि आज वर्षागमके पर्वपर जब दिनकर गत-गत व्याकुल पुलकित करोंसे 'रसा' के मुखको चूम रहा है उसका परिणाम अनिवार दुर्दम निष्ठुर प्रहार सारे हिमभरका अपने प्रतापसे भस्मीभूत कर रहा है" उस समय मैं क्या कर रहा हूँ मैं?

हो गया व्यर्थ जीवन मैं रण में गया हार
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी

कवि सोचता है कि काश मैं कोई राजपुत्र होता तो मेरे ही मैं दर्शनोंसे पूत होता, विद्वान् मात्र मेरे अनुचर होते, मेरे नमस्कारके लिए नतशिर और उत्कण्ठित होते। अखबारोंमें मेरे प्रशस्ति गान होता, अपस्वर लिखे जाते चित्र छपते। राजपुत्र न होकर किसी लखपतीका बेटा ही होता तो सात समुद्र पार शिक्षाके लिए जाता। मेरे पिता दक्षिणी राजनीतिके बलधार होते धनपर एकाग्रचित्त होकर भी साम्यवादका पद पाते जनता उन्हें अपना राष्ट्रपति बनाती। हिन्दीके सम्मानमें तभी

उसी समय पुजारी आया और बेलाको तोड़कर चला। मैं प्रियके चरणोंमें जीवनका विसर्जन करने जा रही हूँ—और बेला चली गयी कविको सत्यके लिए सब कुछ दे देनेका नया सन्देश देकर। बेला सरस्वतीके रूपमें मानो कवि पुरुषोत्तमको अपना नया सन्देश देने आयी थी और कविने उस सन्देशको मानकर सत्यकी साधनामें बिना प्राप्तिकी आकांक्षाके सब कुछ विसर्जित कर दिया। इसी आत्मविसर्जनकी पुण्य गाथा है निराला का व्यक्तित्व। आजके साहित्यकार यशलिप्सा द्वेष स्वार्थ एक दूसरेको नीचे गिरानेके प्रयत्नमें ही अपना व्यक्तित्व नियोजित कर रहे हैं उनके पास अपने सत्यके लिए व्यक्ति और समाजको देनेके लिए कुछ बचा ही नहीं है। वस्तुतः गौरवान्वित व्यक्तित्व वही है जो आत्म-विसर्जन करे पर यह मामूली व्यक्तित्वके वशकी बात बिल्कुल नहीं है।

पर बहुतेरी बाजारू वेश्याका जामा उतारकर पारिवारिक कमरोंकी प्रतिष्ठा पा सकी।

केवल उस समय जब पश्चिमकी सामन्ती संस्कृति और सभ्यताकी खोखली सारहीन दीवारें नये युगके थपेड़ोंकी चोटसे भहरा उठीं। अबतक जो मस्त था, सौम्य और स्तुत्य था वह देखते ही देखते धूलमें लोटने लगा...क्योंकि उसकी ऊपरी चमक-दमकका कैंचुल अन्दरसे छिपे पतनको छिपा न सका। चारों तरफ विनाशकी गुर्राती खण्डहरोंकी धुँधली आकृतियाँ, टूटी हुई परम्पराके जीर्ण कंकाल...विस्मृत सभ्यताके भग्न तोरण...इस विध्वंसके बीच जो नया मध्यवर्ग जन्म ले रहा था वह न केवल निर्बल और असहाय था बल्कि वह अब भी खण्डहरोंकी शक्तिके सामने विनयवश माथा झुका देनेके लिए हमेशा तत्पर था। पेरिसको इस विनम्रता और अपमानको प्रतिष्ठा मानकर मर्कटकी तरह नाचनेवाले मध्यवर्गके तथाकथित बुद्धिजीवियोंसे सख्त नफरत थी। नाज़ीके शासनमें तड़फड़ाते हुए उसका उत्तम धर्मस्थानके 'चार्ट में जाऊँ' में लिखाया और कायर और चापलूस बुद्धिजीवियोंकी नकाब कहानीमें अच्छी खबर ली। 'पुरस कम्प' में उस दिन फैशन पोशाक-प्रदर्शनका उत्सव था। क्लबके एक कमरेमें बहुतसे बुद्धिजीवी [illegible] बड़ा राजनीति आदि गम्भीर मसलोंपर ऊँची ऊँची बातें कर रहे थे। तभी एक आदमी हाथमें शराबकी बोतलें और साथमें कई प्याला अन्य चीज़ें लिये चेहरेपर नकाब डाले कमरेमें दाखिल हुआ और आते ही उसने उन्हें कमरा छोड़कर बाहर निकल जानेका हुक्म दिया। बुद्धिजीवी लोग तैशमें आ गये। चिल्लाकर बोले 'कौन हो तुम इस तरहकी अभद्र बातें करनेवाले? भला यह भी कोई शराब पीनेकी जगह है।" उस आदमीने और भी कड़ाई की, लड़ाईकी नौबत आ गयी। मैनेजर और एक सुरक्षा-अधिकारी कमरेमें आये और उन लोगोंने भी उस नकाबपोशको यहाँ शराब न पीनेकी सलाह दी। तभी नकाबपोशने अपनी नकाब हटा दी...जिसे देखकर सभी सकते रह गये। क्योंकि नकाबके भीतर एक जर्मनी बुद्धिजीवियोंके लिए

दर झाँकता है, वह पीड़ाके अधीन होकर दूसरोंकी नहीं अपनी ही क्षति करता है।

चेखवको जिस चीजसे सबसे अधिक चिढ़ थी वह है तकल्लुफ व्यव-हार। आदमी जब अपनको कुछ ऐसा दिखाना चाहता है जैसा वह नहीं है तो उसका सारा व्यक्तित्व मचानोंके पैरोंमें चलकर अजीब पुतलेकी शक्ल अख्तियार कर लेता है। यह बनावट न केवल हमारे बाहरी रूपको विकृत करती है बल्कि हमारी भीतरी वैयक्तिकताको भी नष्ट करती है। चेखव जब भी ऐसे लोगोंसे मिलता था वह उनके नकाबको फाड़कर उनके हृदयमें झाँकनेकी कोशिश करता था। अक्सर लोग इसलिए कि एक बड़े कलाकारपर हमारे व्यक्तित्वका भी कुछ प्रभाव पड़े नाना प्रकारकी कृत्रिम चेष्टाएँ करते थे। गोर्कीने इस तरहके दो-चार बहुत ही सुन्दर संस्मरण लिखे हैं।

एक बार एक अध्यापक चेखवसे मिलने आये। चेखव रूसके अध्यापकोंके विषयमें बहुत दुःखी और चिन्तित रहा करते थे। उनके रहन-सहनको ऊँचा उठानेके लिए वह दिन रात तरह-तरहकी बातें सोचा करते। उस अध्यापकने चेखवसे मिलते ही लच्छेदार कृत्रिम तत्सम बहुल भाषामें बात चीत शुरू कर दी। कुछ देर तक तो चेखव यह झेलते रहे पर जब सहनकी सीमा पार हो गयी तो उन्होंने अध्यापककी ओर देखते हुए पूछा "क्या यह सच है कि आपके जिलेके किसी अध्यापकने एक बच्चेको बुरी तरह पीटा ?"

इतना सुनना था कि वे सज्जन अपनी कुरसीसे उछल पड़े "क्या आपका मतलब है कि मैं बच्चोंको निर्दयतासे पीटता हूँ।"

"नहीं नहीं मेरा मतलब सिर्फ इतना था कि यह घटना आपके ही जिलेकी है, मैंने अभी कुछ दिन पहले अखबारमें पढ़ा था''''" चेखवके चेहरेपर कोई गुस्सा न था। अध्यापक शान्त होकर बैठ गये और उन्होंने बड़ी संजीदगीसे बताना शुरू किया कि किस तरह अपनी पारिवारिक

बन कर रह गयी है। चारों तरफ़ उदास भूरा आसमान, नंगी धरती… बदरंग वातावरण… यहाँ तक कि मुझे फूल भी रंगहीन दिखाई पड़ते हैं। लगता है जैसे मेरे जीवनको कोई रोग लग गया है"

'लगता नहीं मैडम, यह वाकई एक रोग है, इसका इलाज कराइए। इसे ग्रीक भाषामें 'प्रवंचनाद्भुत रोग (Morbus Pretencialis) कहते हैं। ग़नीमत थी कि इस बार उस महिलाने यह प्रवंचना नहीं दिखायी कि उसे ग्रीक भाषा आती है।

हँसी-ख़ुशी व्यंग्य-विनोदका यह वातावरण केवल लेखककी आरम्भिक कहानियोंमें ही नज़र आता है। बादकी कहानियाँ तो जैसे सारे कैनवसपर आँसूके रंगोंसे रँगी हुई तस्वीरें हैं जिनको एक-एक छायापर करुणा, पीड़ा और अवसादकी अमूर्त भावनाएँ धूम्रछायाकी तरह घुमड़ उठती हैं। दर्द और दुःखका भाव लेखकको अब खीज और कटुतासे नहीं भरता था। दुःख अब एक चेतन प्राणीकी तरह मनुष्यके समक्ष छोटे अपरिमित सत्योंका सन्देश लेकर आने लगा और लेखकने अपनी पीड़ासे भरे हृदयमें जिस सत्यको देखा, वह कोरी बुद्धिमानीसे कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता था।

डार्लिङ्, कुत्तेवाली महिला, कोरस गर्ल, ठिठक, इसी आँसुओं और उनके बीच झलकनेवाले सत्यकी गाथाएँ हैं। चेरी आर्चर्ड, रोथस्चाइल्डके आँसुओंमें उस दीन और दुःखी पीढ़ीकी गाथा है जो समयपर मर न सके और अब इस पृथ्वीपर कुछ न समझते हुए-से जीवित हैं। 'इस दर्दका क्या रूप है, इस पीड़ामें क्या आनन्द है? इसे हम 'दो विरोधी' (व्रागी) कहानीमें बड़ी अच्छी तरह देख पाते हैं। डॉ. किरिलोवका इकलौता बेटा मर गया। माँ-बाप दोनों बच्चेकी लाशके पास बैठे हैं। दोनोंके चेहरोंपर अचेतनतासे उत्पन्न पीड़ाके सौन्दर्यकी एक छाया है… एक आश्चर्य मार्मिक ऐसी छाया जिसे मनुष्य आसानीसे नहीं समझ पाते उसे कह पाना तो और भी मुश्किल है। इसे केवल संगीतमें ही व्यक्त किया जा सकता है' "उस मौन अचेतन पीड़ाका सौन्दर्य…"। उसी समय

वह अपने खेतमें उन तमाम बाधक पौधोंको उखाड़ फेंकना चाहता है, जो खेतीको नुकसान पहुँचाते हैं। वह इस मनुष्यताके प्रत्येक रोगको समझता है उसका इलाज करता है जहाँ कहीं रोग असाध्य है वहाँ भी वह निराश नहीं होता बल्कि कभी-न-कभी आरोग्य होगा इस आशासे निरन्तर उपचार में लगा रहता है। चेखवके मनमें मनुष्य जातिके प्रति असीम अगाध सहानुभूति भी है। वह मनुष्यके हृदयके हलकेसे-हलके सुगम खिल पड़ता है, उसके दुःखमें रो पड़ता है। वह असलमें मनुष्यकी अन्तरात्माके सौन्दर्यका शिल्पी है। उस बदसूरतीसे सख्त चिढ़ है और उस दुर्भावके लिए मानव जीवनसे हटा देनेके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहा। तमाम उम्रके सभी तरहके हजारों-हजार लोगोंको उसकी इस अपार धीरजके पास खड़ा होकर बड़े ममतापूर्ण नेत्रोंसे वह देखता है और अपनी अशेष महानुभवताके साथ वह उनके मंगलकी कामना करता है।

चेखव अपनी कलाके प्रति भी मामूली सजग और जागरूक नहीं था। ताल्स्तायने खुद उसके मुँहपर उसकी 'डारलिंग' कहानीकी तारीफ की। उन्होंने कहा कि चेखवकी कहानियोंकी कलात्मकता उसी तरह बारीक और नाजुक है जैसे लेसपर हमारे देशकी लड़कियाँ बड़े परिश्रमसे कढ़ाई किया करती थीं। चेखवने बड़े संकोचके साथ बड़े धीरेसे कहा लेकिन उसमें तो बहुत-सी त्रुटियाँ वर्तमान हैं।

चेखवकी निन्दा भी कम न हुई। आलोचकोंसे उसे बड़ी चिढ़ थी। उसने लिखा है कि मैं आलोचकोंको उन मक्खियोंकी तरह मानता हूँ जो हलमें जुते धरतीको जोतनेका काम करनेवाले घोड़ोंके पुट्ठोंपर बैठ जाती हैं और जोरसे डंक मारती हैं ताकि वह समझ सके कि इस संसारमें मक्खियों-का भी अस्तित्व है जो अपनी छाप छोड़नेके लिए बेचैन हैं। मैं पच्चीस वर्षों तक अपनी कहानियोंके बारेमें आलोचकोंकी समीक्षाएँ पढ़ता आ रहा हूँ पर उनमें मुझे रंचमात्र भी सत्य दिखायी नहीं पड़ता। बस वे यही कहते हैं 'देखो मैं भनभना सकता हूँ मैं इतना भनभना सकता हूँ जितना मैं

मोमबत्ती बुझ गयी

पास्तरनाक

मुझे दरवाजेसे कमरेके कोनेमें रखी एक मेज दिखायी पड़ती है। मेज पर एक कलमदान सिमटा पड़ा है। यह वही मेज है जिसपर उसने बीते दिनोंमें अपनी रचनाएँ लिखी थीं। रचनाएँ—पाण्डुलेख सब सहेजकर रख दिये गये हैं और आज ऊपर मेजपर मृत्युपेटिका है। अचानक इस दृश्यको देखकर पास्तरनाककी वही पंक्ति गुनगुना उठता हूँ जो किताबोंमें जीवनके संघर्ष पूर्ण क्षणोंमें हमेशा ही हवाकी लहरोंपर तैरती हुई दिमाग आया करती थी। *"मेजपर रक्खी एक शमा है जो जल रही है—जलती रही है—!"*

और आज वह शमा बुझ गयी। जिवागोके रचयिताका अन्त ऐसे ही हुआ जैसे उसने अपने प्रमुख पात्रको मरते देखनेकी कल्पना की थी।

मूरीको पूर्ण हुआ था तो नवजात बच्चेको स्तनसे चिपकाए सोयी स्त्री ऐसी लगी थी मानो जलयान देश-दीपान्तरोंकी यात्रा करता हुआ...मृत्यु के समुद्रोंके थपेड़ोंसे लड़ता हुआ कोई जहाज किनारे आकर खड़ा हो जिसके भीतरसे आगत नवागन्तुकोंका बोझ उतार लिया गया हो—पास्तरनाक आजसे सत्तर वर्ष पहले एक ऐसे ही जहाजसे उतरी नवात्मा था जिसके मनमें अनेक जाने-अनजाने देशोंकी मधुर-स्मृतियाँ थीं और हृदयमें भरपूर थपेड़ोंसे लड़नेकी अटूट उमंग भरी थी। उसका मन और हृदय औरोंसे कुछ भिन्न था यह उसी दिन सबको मालूम हो गया जब कभी लेनिन संघने बाहुके दैत्य-मजदूरोंके जीवनपर एक विशिष्ट परिपाटीमें पूर्व निर्णीत कल्पको लिखवानेमें असफल होकर ऐलान किया कि 'पास्तरनाक

और जब शक्ति अपना उद्देश्य भूलकर मनुष्यताका ही भक्षण करनेपर उतारू हो जाती है तो वह राजशक्ति हो जाती है रक्तलोलुप बन जाती है। पास्तरनाकने ऐसी शक्तिके तथाकथित महत् आदर्शोंकी अपनी व्यंग्य स्थितिसे भर्त्सना की। पास्तरनाकका जीवन शुरूसे अन्ततक एक अजीब आत्म-विडम्बनाका इतिहास है। उसे पुरस्कार मिला साहित्य साधनाके लिए, पर प्रचार मिला राजनीतिको। उसने सत्यके लिए लड़ाई लड़ी पर विजय पाई नहीं उन्हें मिली जो युद्ध-क्षेत्रसे बहुत दूर थे। अपनी साधनाके लिए उसे पुरस्कार नहीं अपमान मिला। कीर्ति मिली ऐसी कि वह अपने समाजमें ही बहिष्कृत-जैसा हो गया। विरोधवादी राजनीति साहित्यकारकी साधना तपस्या और ईमानदारीपर कैसा कुटिल व्यंग्य करती है इसे पास्तरनाकसे समझा जा सकता है। वह सब कुछ होते हुए भी वह अन्ततक अपने आसनपर दृढ़ रहा। अपनी जन्मभूमि और समाजसे वह विमुख न हुआ। वह यह अच्छी तरह समझता था कि इस पुरस्कारके पीछे उसके साहित्यिक मूल्योंकी अभ्यर्थनाका उतना प्रयत्न नहीं है जितना उसके देश और साम्यवादके विरुद्ध प्रचारके स्वार्थका। मिथ्या कीर्तिके अभिप्राय-दूषित प्रचार-गुब्बारेपर उसने अपने व्यक्तित्वको चढ़ने न दिया। वह आँसू पी गया पर उसने उफ् न की। सत्य छोड़कर कीर्ति पाना उसे स्वीकार न हुआ।

आज पास्तरनाक नहीं है। उसके मनमें निरन्तर प्रज्वलित रहनेवाली शमा बुझ चुकी है। 'झिवागोकी हैमलेट' कविता बहुत प्यारी थी और पास्तरनाकको भी और आज जब पास्तरनाक नहीं है तो हमें भी 'हैमलेट' की बार-बार याद आती है……जाने क्यों ?

आवाज़ें बन्द हैं और मैं रंगमंच पर खड़ा हूँ
दरवाज़े के खम्भे के सहारे झुका हुआ।
दूरागत ध्वनि प्रतिध्वनि में ढूँढ़ता हूँ
एक उत्तर

बेमानी जीवनका स्वाभिमानी कलाकार अल्बेयर कामू

कामू नहीं रहा। पत्रोंमें एक समाचार छपा है कि ४ जनवरीको (१९६) पेरिसके दक्षिण-पूर्व स्थित सेन्समें एक मोटर-दुर्घटनामें कामूकी मृत्यु हो गयी। 'दॉन जुआं'ड वॉयर काइजेन्यूस' के लेखककी तरह उसने हमेशा इस प्रश्नपर कि क्या सचमुच वह इस संसारसे सन्तुष्ट नहीं है, अपने हृदय की सारी ईमानदारीके साथ एक ही उत्तर दिया 'नहीं यह संसार मुझे बिलकुल बेमानी प्रतीत होता है।' और किसे मालूम था कि बेमानी जिन्दगीका इतना बड़ा सार्थक कलाकार अस्तित्ववादी विचारधाराका असाधारण मस्तिष्क और बीसवीं शताब्दीके युवक मानसिक अन्तर्द्वन्द्वका इतना बड़ा पारखी 'एक बेमानी तरहकी दुर्घटनाका शिकार हो जायेगा!

कामूको इस विश्वकी किसी भी घटनाके भीतर कभी कोई विवेक-पूर्ण कारण कार्य क्रम या तुक नहीं मिला। जैसा जीवनमें वैसा ही उसकी मृत्युमें भी इस बेमानी नियतिका हाथ है। कदाचित् यह भविष्यमें होनेवाली इस घटनाकी एक हलकी-सी झलक भी देख पाया होता तो इससे व्यंग्यपूर्ण दुःखद उसकी सशक्त कभी अवतारणा न की होती।

कामूके छोटे-से जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण उस दिन आया जब वह नोबल साहित्य पुरस्कार प्राप्तिके अवसरपर अकादेमीके सदस्यों और अन्तर्राष्ट्रीय विद्वन्मण्डल सम्मुख अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए खड़ा हुआ कामूने बड़े नम्रीके भावसे कहा 'मैं इस सम्मानके मिलनेपर इतना आश्चर्यित हो गया हूँ कि मुझे समझमें नहीं आ रहा है कि क्या कहूँ। मैं एक बेतहाशे

मानवताके लिए पुनरुद्धार कही जाती है। उसकामें चालाकी चालबाजी असत्यका सुन्दर और सम्मानित रूप……सत्यकी बेपर्दगी नैतिकताके दुर्बोध अर्थ अर्थके पतन सम्भ्रम……शब्दोंके अनुचित प्रयोग जिसे सही मानें किसे गलत! यह सारा भ्रमजाल आदमीके मनमें एक अद्भुत अनिश्चितताको जन्म देता है। 'अजनबी' में नायक कहता है

माँ आज मरी शायद कल पता नहीं मुझे ठीक मालूम नहीं कुछ। मीरसाल अस्तीरियासे प्रांत आया है। माँकी मृत्युपर उसे मातममें शामिल होनेके लिए छुट्टी चाहिए। वह अपने मालिकसे कहता है

क्षमा करेंगे इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है' बादमें उसे लगता है कि यह सब कहनेकी क्या जरूरत थी मालिक यदि खुद चाहे तो सहानुभूति दिखाये उसके लिए मैं आग्रह क्यों करूँ——।

इस दुनियामें माँकी मृत्युका दुख भी 'तमाशा' होता जा रहा है—— अनुभव पीड़ा सहानुभूति संवेदन सम्बन्ध और अर्थ बदल गए हैं। कामूकी इस निराशा-वादिताका सबसे सुन्दर नमूना 'सिसिफसकी कथा' में उभरता है।

देवताओंने सिसिफसको दण्ड दिया कि वह निरन्तर एक विशाल चट्टानको पहाड़ीकी चोटी तक पहुँचाये जहाँसे चट्टान अपने भारसे खुद फिसलकर गिर जाया करती थी। उन्होंने ठीक ही सोचा था कि निरर्थक और बेकारके श्रमसे बढ़कर दूसरी कोई भयंकर सजा हो ही नहीं सकती।

सिसिफसको यह सजा क्यों मिली? होमरको यदि सही मानें तो सिसिफस शरीरधारियोंमें सबसे अधिक बुद्धिमान् और चतुर था। कहा जाता है कि उसने एसोपसको लड़की एजिनाके हरणका भेद बताया था। जुपिटरने एजिनाका अपहरण किया है——यह बात उसने सत्यके नामपर एजिनाके पिताको बता दी। और इस सत्यका दण्ड मिला अन्धपाताल कारावास और बेकार परिश्रमकी जी-तोड़ सजा। बीचमें अपनी पत्नीके प्रेमकी परीक्षा लेनेके बहाने उसने प्लूटोसे एक महीनेकी छुट्टी माँगी।

जहाँ सामान्य स्तरके लोग शक्तिके गिरफ्ता होकर सब कुछ करनेकी स्थितिमें गये हों हमें वही रास्ता नहीं दिखा सकते बुद्धिका जहाँ ऐसा पतन हो चुका हो कि वह घृणा और अत्याचारको ही अपना उद्देश्य मान ले तो हमें आत्मनिषेधोंके बजाए हो यही अपना जीवन और मरणकी प्रतिष्ठाको बचानेका प्रयत्न करना होगा। इसलिए मैं लेखकके दायित्वको भी समझता हूँ। वह दायित्व है, चोट खाकर भी अडिग अन्यायसे पीड़ित पर पूरे जोशके साथ न्यायके लिए प्रयत्नशील दिखा सके और सबके अपने कृतित्वके प्रति आत्माभिमान तथा पीड़ा और लोगोंके बीच विदीर्ण—एक शब्दमें अपने खण्डित व्यक्तित्वके बीच भी ऐसी कृतियोंके सृजनके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ जिन्हें वह सबके साथ अपने युगकी विनाशात्मक प्रवृत्तियोंके बीच खड़ा कर सके।'

कामूने न केवल व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी रक्षाके लिए अपनी कृतियोंमें लगातार प्रयत्न किया बल्कि उसने खुद भी नाजीवादके विरुद्ध अपने देशकी आजादीकी रक्षाके लिए लड़ाई लड़ी। आजादीके कट्टर शत्रुओंसे लड़ते हुए उसने जो आत्मबल प्राप्त किया उसीके कारण वह निर्भीक होकर यह कह सका कि अधिकतम मानवोंको एकताके सूत्रमें बाँधना लेखकका पवित्र कर्तव्य है। दासता और असत्य हमेशा अलगाव पैदा करते हैं इसलिए इनसे हमारा कभी समझौता नहीं हो सकता। इस लिए हर लेखकको यह दो प्रतिज्ञाएँ याद रखनी चाहिए कि सत्यके विषयमें हम जो कुछ भी जानते हैं उसके लिए झूठ बोलनेसे बिलकुल इनकार करना और अत्याचारके खिलाफ चाहे वह किसी भी तरहका हो जोरदार आवाज उठाना।

कामू अपनी इस प्रतिज्ञासे एक बार अवश्य फिर गया जब उसने अल्जीरियाई जनताकी स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें जनताका साथ न देकर अपने देशके न्यस्त अधिकारियोंकी हिमायत की। उसने एक लघु सत्यके लिए बृहत्तर सत्यको विसर्जित कर दिया। कामूकी यह ग़लती उसके प्रशंसकोंके मनमें हमेशा चुभती रहेगी।

जोखम-भरी ज़िन्दगीका 'मातादोर' हेमिंग्वे

किसीने कहा है कि मृत्यु जिन्दगीका आईना है। यह बात इतने सही रूपमें शायद ही किसी अन्य व्यक्तिके बारेमें चस्पा होती है जितना कि हेमिंग्वेके। कठोर परिश्रमसे तपा हुआ शरीर, उभरे जबड़े, खड़े-खड़े सीधे बालोंसे भरा चेहरा, चौड़ा चकला, भूरे बालोंसे घिरा सीना...मृत्युसे खेलनेवाला एक ऐसा दीवानी उसके तमाम उपन्यासोंका नायक है। और कौन कहता है कि कहानीकार अपने पात्रोंमें नहीं जीता! कभी उसने कहा था कि प्रत्येक कहानी जो औसतसे अधिक खींची जाती है मौतमें समाप्त होती है, और आज हेमिंग्वेकी जिन्दगीकी रंगीन धैर्यपूर्ण साहसिक कार्योंसे भरी कहानी जो पिछले पाँच-सात वर्षोंसे अनावश्यक रूपमें उसके न चाहते हुए भी खींची जा रही थी...मौतमें समाप्त हो गयी।

२१ जुलाई १८९८ ई० में इलिनोइसके एक डॉक्टरके घर वह पैदा हुआ। पिता मरीजोंकी चिकित्सासे बचे हुए समयको शिकार और मछली पकड़नेके कार्यमें गुजारा करता था और उसने एक प्रकार पिताकी तरह अपने पुत्रको भी जीवनकी कठिनाइयोंसे जूझने और मृत्युसे खिलवाड़नेकी पूरी शिक्षा दी। प्रथम विश्वयुद्धमें उसने लड़ाईकी अगली पाँतके सैनिककी जिन्दगीकी तमन्ना जाहिर की तो आँखकी कमजोरी त्रुटि बनकर उसके पैरोंसे लिपट गयी। पर वह दुर्बलताओंके सामने माथा टेकनेके लिए पैदा ही कब हुआ था! उसने रेड क्रॉसको वरण की और इटलीकी लड़ाईके मुहिमपर जा पहुँचा। लड़ाईमें उसे दो महान् पुरस्कार मिले...एक वह

समझकर साफ करते समय कारतूसके छूट जानेसे उसकी मृत्यु हो गयी। जैसे कि जिन्दगीमें वैसे ही मृत्युमें अकेलापन, जोखम-प्रियता और आत्मसम्मान उसका साथ न छोड़ा।

१९२६ ई॰ में जब हेमिंग्वेका पहला उपन्यास 'फ़िएस्टा' प्रकाशित हुआ तो उसने अपनी रंगहीन सपाट शैली, आक्रामक भाषा और झकझोर देनेवाली मान्यताओंके बलपर, जिसमें भावुकताका एक कण भी रहने देना वह गुनाह समझता था, आलोचकोंको मानो घूँसे मार-मारकर अपनी ओर आकृष्ट किया। युद्धके परिवेशमें लिखे उपन्यास 'ए फेयरवेल टु द आर्म्स' ने तो उसकी बेमुरव्वत शैलीका सिक्का ही जमा दिया। जीवन कितना बड़ा परीक्षा-स्थल है। इसमें वही जीतता है जो इसके ऊपर मिथ्या ममता, प्रदर्शन, सभ्यता और शराफतके चमकीले परदेको फाड़कर उसमें विद्यमान वास्तविकताको देख पाता है। विशिष्ट व्यक्ति, समाज और राष्ट्र दोनों ही अपनी स्वार्थपूर्तिके लिए इस सामान्य व्यक्ति-सत्ताको एक प्राणहीन मशीनकी तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। इस जोखिमकी कड़ई-तीखी अनुभूतियाँ उसे निरन्तर तीखा बनाती गयीं। वह एक निर्मोही व्यक्तिकी तरह समाजके भीतर रहते हुए भी समाजसे बाहर होता गया। लड़ाईके दौरानमें उसे लगा कि लड़ाई-जैसी गन्दी चीज दुनियामें कोई नहीं है। किन्तु कितने आश्चर्यकी बात है कि इस लड़ाईको जायज ठहरानेके लिए स्वस्थ मस्तिष्कोंके लोग ऊँची-ऊँची बातें करते हैं इसे आदर्श सभ्यता और मानवताकी रक्षाके नामपर अनिवार्य वस्तु मानते हैं। इस उपन्यासके चरित्र फ्रेडरिक हेनरीकी कायामें जैसे खुद बैठकर हेमिंग्वे ही चिल्ला उठा 'बलिदान, यश, महत्त्वपूर्ण जीवन···हुँह···ये शब्द बिलकुल अर्थहीन हैं, फरेब हैं, धोखा हैं···ये युद्धमें लड़नेवाले मनुष्योंको सिर्फ ठगनेके लिए ही इस्तेमाल किये जाते हैं···।' यह सब जानते हुए भी वह युद्धमें लौटा तो नहीं गया, मगर उसकी जोखम-प्रियता उसे बलात् वहाँ खींचकर ले गयी और जब वह चला गया तो उसे भी वह सब कुछ

गहरे अन्धकारमें निरन्तर सोचता रहा 'कैथरीन'''बेचारी भोली बालिका'''मेरे हृदयकी धड़कन केट। आज तुम्हारी पीड़ाका अन्त नहीं। हम दोनोंके सहवासका यह फल मिला है तुम्हें'''क्या एक दूसरेको प्यार करनेका यही परिणाम होता है। वह बहुत-बहुत व्याकुल हो जाता है। उसकी मृत्यु तो जैसे उसे पागल ही कर देती है किन्तु यही प्रेम उसे एक दिन बहुत गन्दी चीज मालूम होता है। 'टु हेव आर हेव नाट' में उसी प्रेमपर खीजकर वह चीखता पड़ा 'यह प्रेम बहुत बड़ी चीज थी थी न ? मैं तुम्हारा दोस्त था'''लिव था' चुप करो'''यह प्रेम भी वैसी ही गन्दी चीज है, झूठ फरेब। यह प्रेम जुर्म है, जुर्म है''' जुर्म है जुर्म है। मैं इससे कहीं बहरा न हो जाऊं।

हम उसको खीजभाहटसे चिढ़कर उसे बहुत क्रूर, निर्मम असभ्य तक कह सकते हैं। यही कहा भी बहुतोंने मगर किसीने शायद उसके मनके इन भावोंको देखनेकी कोशिश ही नहीं की। 'ए फेअरवेल टु द आर्म्स' में उस प्रेमपथिकने कहा था 'हमारे जीवनका सूनापन सदाके लिए हमसे बिदा हो चुका है' एक अनोखा आनन्द और उत्साह'''।" दूसरी सुबह उठकर उसने देखा था कि सूरजकी किरणें खिड़कीसे कमरेमें झाँक रही थीं'''खिड़कीके रास्ते वृक्षोंकी कतार और झीलके किनारे एक पत्थरकी दीवार'''झीलके जल और एक दूसरेसे जुड़ी हुई पर्वत-शृंखलाएँ'''और झीलके नीले जलपर बिखरती हुई सूर्य-रश्मियाँ। वह खड़ा-खड़ा मुग्धभावसे निहारता रहा। ज्यों ही मुड़ा तो देखा कि कैथरीनकी नींद टूट चुकी है'''और वह उसे ही देख रही है''' वही व्यक्ति इतना तीखा'''इतना तल्ख क्यों हो गया कि उसने प्रेमको वासनाके पीछे भटकते परदेकी तरह गन्दा कहा।

हेनरी कहता है, "मनुष्य जितना एकाकी है जितना असहाय है यह एकान्त। मनुष्य इस असहायपनके विरुद्ध यदि अपनी निर्भीकताका परिचय देता है और उसकी निर्भयता सिर उठाती है तो दुनिया उसे जीने नहीं

योजनाएँ साँपके पेटकी तरह फूल रही हैं पर पिछले ग्यारह वर्षोंमें कुछ ऐसा नहीं हुआ जिसको आशा बनाये भूखी जनता नेताओंकी जयकारसे आकाश हिलाती रही। स्वप्न प्रजातंत्र मोटी तनख्वाहें और लम्बे भत्ते। मिला पायना बाबूके कपड़े और जनताका पेट काट-काटकर भारी भारी कोठोंका निर्माण किया जा रहा है पर किसीमें जनताके पुट्ठे सह जानेसे किसीमें प्रजा तरहके सामान सब कामसे सिद्ध हो गये—भयानक सिद्ध। यह शिष्टाचारका नहीं है दु:खी जनताके लिए हैं वे जो रोज अपनी संख्यामें दूनी-चौगुनी वृद्धि करते जा रहे हैं। वे सिद्ध अपने ही लोगोंके बनाये हैं क्योंकि उन्हें जनताके दुःख-दर्दसे कोई मतलब नहीं उन्हें तो अवसर चाहिए और ऐसा अवसर शायद ही कभी आये। शासनमें पड़े परिवारमें जन्मके नाते जो अदृष्ट ऐश्वर्यकी आती है, वह स्वस्थ गरीब बातोंमें कभी दिखायी नहीं पड़ती।

'दिनकर' ने दिल्लीपर एक कविता लिखी है बड़े गुस्सेमें। रेशमी नगरकी चाँदनी रातोंमें श्मशानकी चीत्कारें नहीं पहुँचतीं। उन्होंने अन्तमें कहा

जलते हैं तो ये गाँव देश के जला करें
आराम नयी दिल्ली अपना कब छोड़ेगी
या रक्खेगी मरघट में भी रेशमी महल
या आँधी की खाकर चपेट सब छोड़ेगी

यह भारतके 'उत्तरसम्राट'की घबराहट है, तो औरोंकी क्या हालत होगी!

मैं अब दिल्लीके पिछले सौ वर्षोंके इतिहासकी ओर देखता हूँ तो एक अजीब दर्द आत्मग्लानि और बहुतसे मिल भर आता है। दिल्लीका प्रश्न कागजकी नाव है जो इसमें पिराया यह परिस्थितियोंके भयंकर भँवर-जालमें पिसे बिना रहा नहीं। शताब्दी ऐसा भयंकर केन्द्रीकरण—कुछ व्यक्तियोंके हाथमें सम्पूर्ण देश सिमटकर रह गया है। और जिस देशमें इस प्रकारका

मनमशाहट और उनके साथीके कई मकानोंकी खिड़कियोंके शीशे टूट गये।

यह आँधी है—आँधी नहीं प्रलयकी भूमिका। मैं अपने प्रेमास्पद मित्र-के बहाने सबसे कहना चाहता हूँ कि मित्रो इस आँधीमें केवल बोलनेके बीर्ज आत्मरत भूप हो नहीं सकेंगे! वनीवेल्थ-बतीया बनानेके पेटमें जानेवाला है। चमनमें आकर अनाया अब कुछ न बचेगा। जब मनुष्य नहीं रहेगा तो इसमें की बात कोरी बकवास है। इस बारका युद्ध वह महाभारत है जिसमें हारनेवाला तो नष्ट होगा ही जीतनेवाला भी बरबाद हुए बिना नहीं रहेगा।

बूढ़ा दार्शनिक रसेल इस आँधीके चिह्नोंको देखकर चिन्तित हो गया। 'पंच' पैमफलेटमें एक कार्टून छपी है जिसमें रसेल कहता कि उसके प्रधानमन्त्री निकिता ख्रुश्चेव और अमरीकी राष्ट्रपति आइक दोनों ही पागल प्रतिद्वन्द्वी हैं जिन्हें अपनी मिथ्या कीर्तिके आगे कुछ नहीं दिखायी पड़ता। ये दोनों महानुभाव अपनी क्षुद्र नीतियोंकी सीमाओंसे ऊपर उठकर मनुष्यताके विनाशके खतरेको नहीं देख सकते। जनेवामें अणुशक्तिके आणविक प्रयोगोंपर होनेवाली वैज्ञानिक परिषद्में फूट पैदा हो गयी और सम्मेलन बीच ही में बन्द हो गया।

अणु-परीक्षणसे उत्पन्न खतरेकी जाँचके लिए नियुक्त राष्ट्रसंघीय वैज्ञानिक परिषद्ने जो पैम्फलेट छापा है उससे मालूम होता है कि रेडियोधर्मि-यताका दबाव दिनों-दिन बढ़ रहा है और वायुमण्डल ओसके पदार्थ दूषित हो चुका है।

आप पूछेंगे यह तो सुना पर इसका भूदान और साहित्यकारसे क्या सम्बन्ध है? मैं भी पूछता हूँ इसका भूदान और साहित्यकारसे क्या सम्बन्ध? मेरी समझसे सम्बन्ध है और बहुत गहरा है। मैं भूदानकी उप-योगितापर विचार नहीं करना चाहता। मैं जानता हूँ हिन्दीके बहुतेरे साहित्यकारोंके मनमें इस आन्दोलनने कोई आकर्षण नहीं जगाया है। हमें इस आन्दोलनकी व्यावहारिकतापर पूरा भरोसा नहीं। हिन्दीके एक

रैक्वका उपाख्यान आता है। जानश्रुति राजा इतना अहंकारी हो गया कि उसने सोचा कि सारा विश्व उसीके सहारे कायम है। उसका प्रताप धू-लोककी तरह चमकने लगा। एक बार किलेके पाससे गुजरते हुए दो पक्षियोंमें-से एक बोला 'जरा दूर हटकर चलो। देखते नहीं जानश्रुतिका तेज अग्निकी तरह प्रज्वलित है, कहीं तुम उससे जल न जाओ।

उसका साथी बोला 'क्या जानश्रुति का तेज गाड़ीवान रैक्वसे भी ज्यादा प्रखर है।

राजा तमतमाया रैक्वके पास पहुँचा। उसने अतुलित सम्पत्ति और धनको सामने रखकर कहा आप इसे स्वीकार करें और बतायें कि आपका प्रताप इतना प्रखर कैसे है? रैक्वने उसके धनपर ठोकर मार दी और बोला शूद्र क्या तू मुझे अपनी सम्पत्तिसे खरीद लेगा। तू समझता है कि तू ही विश्वका नियन्ता है। मुझ सभी भूतोंमें व्याप्त उस एक शक्तिको जो नहीं पहचानता उसका विनाश अवश्यम्भावी है।

मेगसेसे पुरस्कार मिला है विनोबाको कम्युनिस्ट मित्रोंको इसमें घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है। विनोबा सम्पत्तिसे नहीं खरीदे जा सकते। वे बिक भी जायें तब भी भूदान नहीं बिकेगा। उनके पीछेका दर्शन नहीं बिकेगा।

मैं व्यक्तिके बारेमें कुछ कहना नहीं चाहता। विनोबामें वह शक्ति हो भी सकती है नहीं भी हो सकती। मैं तो उन हजारों विनोबाओंके बारेमें कह रहा हूँ जो विश्वके प्रत्येक कोनेमें हैं पर जिनको आवाज कोई नहीं सुनता। क्यों? क्योंकि उनके अन्दर वह शक्ति प्रस्फुटित नहीं हुई जिसकी आवश्यकता है। वह शक्ति जनता दे सकती है। शक्ति पत्थरकी मूर्तिमें नहीं होती। पुजारीकी भावनामें होती है। विनोबा तो निमित्त मात्र हैं उदाहरण हैं। साहित्यकार उस शक्तिका ऋषि है मन्त्रदाता। साहित्यकार जब इस प्रकारके व्यक्तिके बारेमें सोचेगा मनुष्यताके भावी आसन्न संकटसे उसकी रक्षा करनेके लिए जब वह कटिबद्ध होगा तो ऐसे

शंकापुत्र बनाम अनास्थाके बेटे

आम तौरसे समूचे नये साहित्यके विषयमें और खास तौरसे नयी कविताके विषयमें एक बात यों सुनायी पड़ती है 'शंका अनास्था और कुण्ठाका साहित्य'। अचम्भा तो तब होता है जब प्रायः निश्चित परिपाटीकी प्रवृत्तिमूलक आलोचनाका सृजन करनेवाले आलोचक बिरादरी-के उन रचनाकारोंपर भी इस बातका प्रयोग करते नहीं हिचकते जिन्होंने नयी कविताकी शैलीको मौजूं समझकर अपना लिया है। वे समीक्षक नये साहित्यके विषयमें अपना फ़ैसला सुनाकर कुछ इस अन्दाजसे गरदन झटककर मुसकराते हैं मानो कह रहे हों कह दिया न माने नहीं आखिरको कहना ही पड़ा। दुर्भाग्यवश हिन्दीका लेखक ऐसा अहिंसा-वादी जीव है कि वह ऐसे फ़ैसलेपर कुछ न कहते हुए आत्मग्लानिसे गरदन झुका लेता है।

असलमें यह सारी कठिनाई, शब्दोंके ग़लत इस्तेमाल या कि ठीक अर्थ न जाननेके कारण हुई है। शंका और अनास्थाको न केवल समानार्थ बोधक बना लिया गया बल्कि उनके विभिन्न पहलुओं और स्वभावानुसारी अर्थ-भेदको भी भुलानेकी कोशिश की गयी है। एक व्यक्ति यदि किसी यथार्थ या भावस्थितिके प्रति शंका रखता है तो इसका अर्थ नहीं कि वह अनास्थाको प्रश्रय देता है। इस अवांछित स्थितिके कारण साहित्यमें एक ओर अन्धी समीक्षाकी राशि एकत्र होती है और दूसरी ओर लेखक स्वस्थ और आस्थावान्का खिताब पानेके निमित्त पेटेण्ट समाधानोंको अपनी रचनाके अन्तमें पूँछकी तरह जोड़ना आरम्भ कर देते हैं। आजके समाजमें जब कि जीवन दिनपर-दिन अधिक समस्याओंसे घिरता जा रहा है जिस

नहीं करते कि हम सन्देह कर रहे हैं। क्रियाका अस्तित्व कर्ताके अस्तित्व का परिणाम है। इसलिए चूँकि मैं सन्देह करता हूँ इसलिए मैं हूँ। मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ। मैं जितना ही शंका करता हूँ उतना ही सोचता हूँ और जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही अपने अस्तित्वके बारेमें मेरा विश्वास बढ़ता जाता है (je pense donc je suis) देकार्तने पहली बार दर्शनको प्राचीन आचार्योंके मताधारिक ज्ञान और मध्यकालीन धार्मिक नीति-शास्त्रीय वातावरणसे निकालकर व्यावहारिक धरातलपर प्रतिष्ठित किया। एक कल्पित महत्तम सत्य (ईश्वर) से व्यक्ति सत्यकी ओर नहीं बल्कि व्यक्ति सत्यसे महत् और महत्तर सत्यकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित किया। सत्य यदि प्राप्य है तो व्यक्तिकी सीमित ग्राहिका-शक्तिके माध्यमसे ही प्राप्य हो सकता है क्योंकि वह सत्य स्वयं व्यक्तिसीमित नहीं होता। वस्तुतः अपने सत्यको जो जितना अधिक व्यापक सत्यका रूप दे सके वह महत्तम सत्यके उतने व्यापक अंशको समझनेमें सक्षम होता है।

अनास्था इसके ठीक विपरीत है। किसी चीज़में आस्थाका न होना अनास्थाका अनिवार्य भाग है। कोई व्यक्ति समाजमें आस्था नहीं रखता पुरानी परम्पराओंमें आस्था नहीं रखता ईश्वर और ईश्वरीय विधानमें आस्था नहीं रखता न सही इतने मात्रसे उसे अनास्थावान् कहना उचित नहीं होता। शंकाको साधनके रूपमें नियोजित करके अहम्से इदम्की ओर प्रेरित सत्यान्वेषी भी किसी चीज़में आस्था नहीं रखता जबतक कि आस्थाके एक निश्चित आधारकी खोज नहीं कर लेता उसे आस्था केवल एक चीज़में होती है मानो 'मैं' में अपनम। अनास्था उसे कहेंगे जब अपनेमें भी आस्था न रहे। अनास्थावान् व्यक्ति वह है जिसे ख़ुद अपनेमें विश्वास नहीं। और यह स्थिति निस्सन्देह कुण्ठित और निन्दनीय है। इसलिए केवल कुछ अनास्था या निराशा-सूचक परिस्थितियोंके आधारपर किसी व्यक्तिको निराशावादी या आस्थाहीन कह देना ठीक नहीं। साहित्यमें तो यह निर्णय और भी ज़्यादा घातक हो जाता है क्योंकि लेखक अपनी रचनामें कम

अन्ततोगत्वा कामू यह मानते हैं कि यह जीवन अतार्किक और अनिश्चितता लिए हुए है। इस सच्चाईको जान लेनेके बाद मनुष्य अपने लिए सार्थकता पैदा करता है और अन्तमें अपने भाग्यका खुद निर्माता बन जाता है। कामूने जिस परिस्थितिमें इस सत्य या तथ्यको स्वीकार किया वह उनके 'नोबेल प्राइज' भाषणसे स्पष्ट हो जाता है। 'लन्दन मैगजीन'के जून-अंकमें उनके भाषणका अँग्रेजी अनुवाद छपा है।

कामू निराशावादी नहीं हैं और न अनास्थावादी ही क्योंकि उन्हें अपनेपर विश्वास है अपनी कलापर विश्वास है। इसका सबूत उनकी रचनाएँ हैं। प्लेग अजनबी पतन और सिसिफसकी कथा कामूकी शक्ति-के सूचक हैं। जिन्दगीमें ऐसे क्षण आते हैं जब मनुष्यकी आस्था हिल जाती है, विश्वास लड़खड़ाकर ढह जाते हैं पर मनुष्यकी अदम्य जिजीविषा उसे निरन्तर साहस देती रहती है। 'सिसिफस' कामूके समाजमें हजारों की संख्यामें मिल जायेंगे जिनकी जिन्दगी शक्तिशालियोंके हाथका मात्र खिलौना बनकर रह गयी है। उनका शासन-पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय कैम्प नारोंके मजबूत हाथ किसी व्यक्ति या देशको पीसते निकल जाते हैं और हम कुछ कर नहीं पाते। मनुष्य बेहतर जिन्दगीके लिए संघर्ष करते-करते मर जाता है, उसकी आवाज सुनकर भी कोई कुछ नहीं कर पाता। 'सिसिफस'को देवताओंने दण्ड इसलिए दिया कि वह न्यायके स्वत्वका समर्थक था। दण्ड भी क्या? व्यर्थ श्रम। देवता जानते थे कि व्यर्थ श्रमसे बड़ा और कोई दण्ड नहीं है। अन्ध-घाटीमें भारी चट्टानको ढकेलकर चोटी तक ले जाना। चोटी तक पहुँचनेके पहले चट्टान लुढ़क जाती और 'सिसिफस' उसे फिर ऊपर ढकेलना शुरू कर देता है। बीचमें एक बारकी छुट्टी लेकर वह अपनी पत्नीका प्रेम जाँचने गया तो धरतीकी गन्ध फूलोंकी सुगन्ध, समुद्र की लहरोंमें ऐसा उलझा कि हाजिरीका दिन ही भूल गया—अपराधके कठोर दंडने उसे खींचकर पुनः उसी अन्ध-घाटीमें फेंक दिया। क्या अपराध था 'सिसिफस'का? यही न कि वह न्यायके पक्षमें था और धरतीसे फूलसे

अल्बेयर कामू यह मानते हैं कि यह जीवन अतार्किक और अनिश्चितता लिये हुए है। इस सच्चाईको जान लेनेके बाद मनुष्य अपने लिए सार्थकता पैदा करता है और अन्तमें अपने भाग्यका खुद निर्माता बन जाता है। कामूने किस परिस्थितिमें इस सत्य या तथ्यको स्वीकार किया यह उनके 'नोबेल प्राइज' भाषणसे स्पष्ट हो जाता है। 'स्टन पैमफीन'के जून-अंकमें उनके भाषणका अंग्रेजी अनुवाद छपा है।

कामू निराशावादी नहीं है और न अनास्थावादी ही क्योंकि उसे परमेश्वर विश्वास है, अपनी कलापर विश्वास है। इसका सबूत उसकी रचनाएँ हैं। प्लेग, अजनबी आदमी और सिसिफसकी कथा कामूकी अस्ति-के सूचक हैं। जिन्दगीमें ऐसे क्षण आते हैं जब मनुष्यकी आस्था हिल जाती है, विश्वास लड़खड़ाकर रह जाते हैं पर मनुष्यकी अदम्य जिजीविषा उसे निरन्तर कायम बनाये रहती है। सिसिफस आजके समाजमें हजारों भी सहनाम मिल जायेंगे जिनकी जिन्दगी शक्तिशालीके हाथका नाचीज खिलौना बनकर रह गयी है। समाज शासन-पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय षड्य-न्त्रोंके मजबूत हाथ किसी व्यक्ति या देशको रौंदते निकल जाते हैं और हम कुछ कर नहीं पाते। मनुष्य बेहतर जिन्दगीके लिए संघर्ष करते-करते मर जाता है उसकी आवाज सुनकर भी कोई कुछ नहीं कर पाता। 'सिसिफस'को देवताओंने दण्ड इसलिए दिया कि वह न्यायके पक्षका समर्थक था। दण्ड भी क्या? व्यर्थ श्रम। देवता जानते थे कि व्यर्थ श्रमसे बड़ा और कोई दण्ड नहीं है। यम-घाटीमें भारी चट्टानको ढकेलकर चोटी तक ले जाना। चोटी तक पहुँचनेके पहले चट्टान लुढ़क जाती और 'सिसिफस' उसे फिर ऊपर ढकेलना शुरू कर देता है। जीवन एक रातकी छुट्टी लेकर वह अपनी पत्नीका प्रेम जाँचने गया तो धरतीकी गन्ध फूलकी सुगन्ध, समुद्र की लहरोंमें ऐसा उलझा कि हाजिरीका दिन ही भूल गया....यमदूतके कठोर पंजेमें उसे खींचकर पुनः उसी यम-घाटीमें फेंक दिया। क्या अपराध था 'सिसिफस'का? यही न कि वह न्यायके पक्षमें था उसे धरतीसे मुहब्बत

होना ही पड़ता है। उनकी उदासी एक बहुत-बड़े विश्वासको जन्म देती है क्योंकि जूझनेकी ताक़त देती है। आलोचकका कर्तव्य है, इस बारीक अन्तरको समझकर आस्था और अनास्थामें फ़र्क करना, शंका और निराशा का अन्तर बताना। शीघ्रतामें आप ऐसे साहित्यका अपमानित करनेके अपराधी न बन जायें जो सहस्रों पीड़ित व्यक्तियोंके मनमें नयी उदासीको सहानुभूतिके साथ समझते हुए उन्हें जीवनकी भूमिकासे जोड़ना चाहता है।



विपदैवा सरु

वे अलग-अलग वर्गोंकी विरोधी बातें करते हैं। इस प्रकारके सम्बन्धोंमें सबसे मजबूत सिमेण्ट पार्टी-सम्पर्क मानो एक ही मण्डली या गिरोहका सदस्य होना कहा जा सकता है। इन गिरोहबाजोंमें भी गुटागुटत यानी घेरेके अन्दर घेरे होते हैं। इस तरहके चमत्कार लेखोंमें घटिया रचनाओंकी दाद उसी अन्दाजसे दी जाती है जिस अन्दाजसे भिखारी चोरोंके हाथों बनी झोली चायको। यह आफत केवल अपने घरमें ही नहीं है। लन्दन मैगजीनके मई '५८ के अंकमें एलन रोजका एक लेख छपा है ('नये लेखकों-से')। उसमें भी लेखकने इस गिरोहबाजी और उसके भयंकर परिणामोंके लिए काफी चिन्ता व्यक्त की है। उन्होंने लिखा है कि लन्दनमें और मैं समझता हूँ और दूसरी जगहोंमें भी केवल कलाके आधारपर कुछ लोगोंके समूहको अलग नहीं रखा जा सकता। इसीलिए वे एक सम्प्रदाय या स्कूल चलाते हैं और 'स्कूल' बहुत जल्द पार्टीका रूप ले लेते हैं। क्योंकि वे यह नहीं मानते कि कला साहित्य या सौन्दर्यका कोई अलग अस्तित्व है या कि वे (साहित्य कलादि) दुनियामें अन्यत्र भी अपना आकर्षण कायम रख सकते हैं इसीलिए किसी लेखक या पुस्तककी नाप-जोख उसके अन्तर्निहित मूल्य (कलात्मक सौन्दर्य) के आत्मीय संवेदनाके आधारपर कभी नहीं की जाती आधार केवल गिरोहका मापदण्ड हुआ है यानी पार्टीके प्रति लेखककी आस्था और भक्ति।

इस प्रकारकी स्थितिके कारण साहित्यकारके मनमें 'मैं' और 'हम' के बीच बहुत बड़ा विपर्यास पैदा हो जाता है। पिछले दिनों दिल्लीके एक लेखकके व्यक्तिगत उत्थानपर जिस प्रकारकी आलोचनाएँ आयीं क्या वे इसका सबूत नहीं हैं? लेखकके पहले उपन्यासके बाद ही एक नगरकी किसी संस्थाने अभिनन्दन-गोष्ठीका आयोजन किया तुरन्त दूसरी संस्थाकी ओरसे इससे भी बड़े पैमानेपर स्वागत-समारोह हुआ। इन समारोहोंका उद्देश्य रचनाकी श्रेष्ठताके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना नहीं था उसे (लेखकको) अपनी पार्टीमें शामिल दिखानेका प्रयत्न था। दोनों दलोंकी ओरसे 'मार्के'

बसे किसी और लोकमें जाना चाहिए था। इस तरहके आलोचकोंके कई वर्ग माने जाते हैं। रामरोचारने लिखा है साहित्यके सबसे बड़े शत्रु वे आलोचक हैं जो सद्-असद्का विवेक नहीं रखते। इनके भी कई प्रकार हैं अरोचकी सतृणाभ्यवहारी और मत्सरी। अरोचकी समालोचक वे हैं जिन्हें अच्छेसे अच्छी रचना भी नहीं जँचती। स्वाभाविक अरोचकता सैकड़ों संस्कारोंसे भी दूर नहीं की जा सकती। जिस प्रकार कि कितनी ही बार ओषधियों-द्वारा संस्कार किये जानेपर भी रत्नोंकी कालिमा नहीं मिटती। सतृणाभ्यवहारी आलोचक बड़े भावुक होते हैं वे प्रत्येक वस्तुपर चाहे वह भली हो या बुरी वाह-वाह कर बैठते हैं। इस प्रकारकी आलोचना प्रायः गोष्ठियोंमें चेहरोंसे व्यक्त हुआ करती है। मत्सरी आलोचक ऊँचीसे-ऊँची रचनाको भी पसन्द नहीं करते। छिद्रान्वेषण ही उनका धर्म है।

आलोचक कोई बाहरसे आया हुआ प्राणी नहीं है। वह हमारे बीच ही है, मानो हमी हैं। इस प्रकारके आलोचक बननेकी प्रेरणाएँ कई तरहसे मिलती हैं। पेशेवर आलोचकोंसे चिढ़ कर प्रतिशोधी रचनाकारके आक्रमणका उत्तर देनेके लिए या सम्मानप्राप्त बुजुर्ग साहित्यिकोंकी भंगिमाएँ या उनकी पगड़ी उछालनेके निमित्त रचनाकार आलोचक का बाना धारण करता है। छद्मनामसे लिखी गयी आलोचनाओंके विरोधमें इधर काफ़ी कुछ कहा गया है। छद्मनामसे लिखना बुरा नहीं है। जरा इसके लिए, यदि कोई छद्मनामसे आपके पास एक पत्र लिखे कि बन्धु, आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया है चेहरा विकृत है मानस मलिन। देखनेसे घृणा होती है आपको जो रोग हुआ है उसे मैं जानता हूँ क्या वह है उपचार करके देखियेगा। आप उस व्यक्तिसे जरूर नाराज होंगे क्योंकि वह कुछ बुरी बातें जिन्हें आप छिपाते हैं जान रहा है। पर यदि सचमुच उसकी बतायी दवासे आप स्वस्थ होते हैं तो क्या अत्र अपने मन ही भीतरसे उसके प्रति कृतज्ञ नहीं होते? किन्तु यदि छद्मनामसे

पस्त करनेका प्रयत्न करते हैं। किसी एक व्यक्तिसे चिढ़े तो उसके विरोधी अन्य लोगोंके साथ हमारी स्वाभाविक दोस्ती क़ायम हो जाती है। ऐसे सहानुभूतिके देवी साहित्यकार बन्धु मौके-बेमौके प्रत्येक सन्दर्भमें विचार विमर्श या किसी अन्य सेमिनार आदिमें अपने व्यस्त अभिप्रायोंको काफ़ी मुलम्मा चढ़ाकर प्रस्तुत करते रहते हैं। कभी-कभी बन्धु (जैसा वे समझते हैं)-पक्षीय दलमें फूट डालनेके लिए कई हथकण्डे व्यवहारमें लाते हैं। जैसे एक कहानीकार या किन्हीं कहानीकारोंको इष्टार्थ भ्रष्ट करनेके मनसूबेसे यों पैतरेबाजी करता है। उनसे मिलनेपर कहेगा "भाई तुमने तो दो चार मास्टरपीस चीज़ें लिखी भी हैं पर वो तुम्हारे दोस्त''" और जब दोस्तसे मिले तो उसकी बातें ज्योंकी-त्यों दोहराकर कहेगा "सच कहता हूँ भई तुम्हारी तो कुछ चीज़ें हैं और पहेली पर उन साहबको तो खुदा हाफ़िज़।"

मेरी समझसे यह सारी गड़बड़ी 'मैं' और 'हम'के इस भयंकर विपर्ययके कारण हुई है। पानीकी सतहपर तैरती हुई लहरोंमें जितना ज्वार-भाटा है उतना उसमें नहीं। क्यों? क्योंकि पानीके ऊपरकी लहरें, लहरें पहले हैं पानी बादमें। लहरोंका पानी नहीं होता पानीकी लहरें होती हैं। सतहपर तैरनेवालोंके लिए रास्ता बन्द है, क्षेत्र सीमित है, मार्ग अवरुद्ध है, अन्तर्मुखी है, इसीलिए सब जगह प्रतिरोध है। किन्तु जो सतहसे तलकी ओर उन्मुख हैं उनका रास्ता भिन्न है डूबनेका मज़ा अलहदा है अनुभव अलग है उपलब्धि अलग है। इसमें तो अवरोध नहीं है, न प्रतिरोध न अतिरोध। इस तहकी स्थितिमें पानीकी मर्यादा सर्वोपरि है। मैं और हमके भीतर इसी एकतानकी मर्यादा समानधर्मिता होनी चाहिए।

आप कहेंगे यह सब तो है पर बताइए आप कौन डूबके बैठे हैं जो बीसहदसे यह उपदेश सुनाये जाते हैं। दूसरा चारा नहीं है इसलिए, बन्धु, इस निबन्धका शीर्षक 'मैं और हम' है। तुम या आप नहीं।

ममता करनेका प्रयत्न करते हैं। किसी एक व्यक्तिसे चिढ़े तो उसके विरोधी अन्य लोगोंके साथ हमारी स्वाभाविक दोस्ती कायम हो जाती है। ऐसे मनःप्रवृत्तिके ऐसे साहित्यकार बन्धु सीधे-सीधे प्रत्येक सत्रमें विचार विमर्श या किसी अन्य सेमिनार आदिमें अपने व्यस्त अभिप्रायोंको काफ़ी मुलम्मा चढ़ाकर प्रस्तुत करते रहते हैं। कभी-कभी बन्धु (जैसा वे समझते हैं)- मसीहा बननेमें फूट डालनेके लिए कई तुकबन्दी व्यवहारमें लाते हैं। जैसे एक कहानीकार जो किन्हीं कहानीकारोंको इकट्ठा नष्ट करनेके मनसूबेसे यों पैंतरेबाजी करता है। उनसे मिलनेपर कहेगा 'भाई तुमने तो दो-चार 'मास्टरपीस' चीजें लिखी भी हैं पर वो तुम्हारे दोस्त……। और जब दोस्तसे मिले तो उसकी बातें ज्यों-की-त्यों दोहराकर कहेगा 'सच कहता हूँ भई तुम्हारी तो कुछ चीजें हैं और वहीं पर बस साहबको तो पूरा हासिल।"

मेरी समझसे यह सारी गड़बड़ी 'मैं' और 'हम'के इस भयंकर विपर्यासके कारण हुई है। पानीकी सतहपर तैरती हुई लहरोंमें जितना शोर-शराबा है उतना तलमें नहीं। क्यों? क्योंकि पानीके ऊपरकी लहरें, लहरें रहते हैं पानी बादमें। लहरोंका पानी नहीं होता पानीकी लहरें होती हैं। सतहपर तैरनेवालेके लिए रास्ता बन्द है, ऐसा सीमित है, मार्ग अवरुद्ध है धक्का-मुक्की है इसीलिए सब जगह प्रतिरोध है। किन्तु जो सतहसे तलकी ओर उन्मुख है उसका रास्ता खुला है दूसरेका भला अच्छा है, अनुभव अलग है उपलब्धि अलग है। इसमें तो अवरोध नहीं है, न प्रतिरोध न प्रतिरोध। इस तरहकी स्थितिमें पानीकी मर्यादा सर्वोपरि है। मैं और हमके भीतर इसी एकताकी मर्यादा समानधर्मिता होनी चाहिए।

आप कहेंगे यह सब तो है पर जनाब आप कौन तुर्रे खाँ हैं जो मौलवीसे यह उपदेश सुनाने चले हैं। तुम्हारा चोखा नहीं हूँ इसलिए बन्धु इस निबन्धका शीर्षक मैं और 'हम' है। तुम या आप नहीं।

मैं क्या हूं

और उससे एक दिन उसके मित्रने पूछा "आपने आज तक कभी अपना परिचय नहीं दिया आखिर आप कौन हैं ?'

'मैं क्या हूं हां'''' और वह माथा पकड़कर यों बैठ गया जैसे कहीं कोई नस टूट गयी हो।

मित्र घबड़ाकर उसका हाथ पकड़कर बोला 'क्या बात है, यह परेशानी कैसी

दार्शनिक उसकी ओर हक्का-बक्का ताकता रह गया फिर बोला 'यही सवाल तो मैं भी अपनेसे करता रहा हूं मगर आज तक मुझे कोई उत्तर न मिला।

मैं भी चाहूं तो इस सवालपर इसी तरह हक्का-बक्का होनेका अभिनय कर सकता हूं चाहूं तो अपनेको बहुत परेशान कर लूं, पर मैं जानता हूं कि इससे मुझे छुटकारा मिलनेका नहीं। क्योंकि मैं दार्शनिक नहीं हूं लेखक हूं और मेरे लिए इस तरहका अभिनय करना कतई असम्भव है। मैं जो हूं वह बताना ही पड़ेगा। अपने लिए नहीं तो उन अनेक लोगोंके लिए जिनकी ओरसे जाने-अनजानेमें मैं उन्हींके रूपमें खड़ा कर दिया गया हूं। जिनके बारेमें मैंने कभी कुछ कहा है, वे हाथ उठा-उठाकर, चश्म फाड़-फाड़कर पूछेंगे आखिर हमारी ओरसे आप अब जवाब क्यों नहीं देते। पिछले साल तो आपने हमारे बारेमें जो मनमें आया कह दिया अब जब मौक़ेपर जवाब देना पड़ा तो कतराने लगे—ठीक वैसी फुस-फुसाहट भरी आक्रोश लिपटा व्यंग्य हिकारत-भरी भाषा रंग और स्वरमें आवाज़ोंका एक भयंकर कोलाहल—मैं सचमुच घबड़ाकर मन

वस्तु मानता हूँ और इसकी वेदीपर देहकी भूख और प्यासको कुरबान करनेका उपदेश देता हूँ। मैं भी मानता हूँ नन्हीं, कि प्रेम और शरीरकी भूख एक-दूसरेके विरोधी तत्त्व नहीं हैं। अभी कल ही तो प्रसिद्ध मानव विज्ञानी डॉ. मैरियर एक्लिनका 'प्रेम-दर्शन'पर भाषण सुना था। उन्होंने बड़े मजाकसे हँसते कहा था कि किन्से रिपोर्ट-जैसे वैज्ञानिक विवरणमें प्रेम नामक किसी वस्तुकी चर्चा भी नहीं है जब कि योरोपके आध्यात्मिक वाङ्मयमें प्रेमकी चर्चामें 'सेक्स' का मामूली जिक्र किया गया है। डॉक्टर एक्लिनने काफी जोर देकर कहा कि प्रेम और दैहिक व्यापारके सम्बन्धोंका सही ज्ञान होना जरूरी है। यह समझना गलत सकती है कि दैहिक प्रेम किसी भी प्रकार निचले स्तरकी चीज है। हमें यह कभी भूलना नहीं चाहिए कि इसी दैहिक प्रेमने मनुष्यको उच्चतम काव्य और श्रेष्ठतम साहसिक कार्योंके लिए प्रेरित किया है—दैहिक प्रेम स्वयंमें एक कला है, ऊँचीसे-ऊँची कला। दया ममता और मनुष्यता इसके तत्त्व हैं।" किन्तु नन्हीं बुद्धिसे किसी चीजको समझना-समझाना एक बात है, और उसे जीवनके संघर्षोंमें सही रूपमें देखना बिलकुल दूसरी। यह प्रेम बिलकुल सुलभ और सहज है जैसे हवा पानी और धूप। किन्तु ज्यों ही मनुष्य इसे पानेके लिए हाथ बढ़ाता है उसे लगता है कि यह प्रेम नहीं पानीकी सतहपर नाचती एक छाया भी उसे इस प्रेममें दया ममता और इनसानियतके नहीं भूखा स्वार्थ और ईर्ष्याग्नियतके तत्त्व दिखाई पड़ते हैं। और नन्हीं जब मैं प्रेमके ऐसे भँवर जालमें पड़ी आत्माओंको छटपटाते हुए देखता हूँ तो खूब भावुक हो जाता हूँ। मैं उन लोगोंमें नहीं हूँ जो फिराककी हालतमें प्रेमके महलको ठोकर मारकर चकनाचूर कर देना चाहते हैं वे प्रेमके भ्रमको दुनियाके दूसरे अनेक दुःखोंमें डुबाकर गुम हो जाना चाहते हैं पर मैं तो चाहकर भी यह नहीं कह पाता कि 'और भी गम हैं दुनियामें मुहब्बतके सिवा' क्योंकि मैं तो इस प्रेमको इतना ऊपरी और शारीरिक आवश्यकताका एक अंग भर नहीं मान

भी आत्माको मिलन नहीं छू सकती। शायद उसे भास है कि उसकी इस स्थितिके मूलमें रामघुमन है। वह उसे प्यार करके भी अपना नहीं सकती आकाशदीपकी चम्पाकी तरह, वह अकेले द्वीपमें सिर्फ बिसूरनेको ही अपना कर्तव्य मान बैठी। सब कुछ सह जायेगी।

'फिर आपने और सब लेखकोंमें छाई बना हुआ आप तो एकाकीपनकी पीड़ाका विलाप बढ़ाते हैं उसे फ़ैशन कहते हैं।

'ओह तुम्हें भी पैगम्बरुम आलोचकोंकी हवा लग गयी है। मैंने अकेलेपनका कभी विलाप नहीं किया। मैं अकेलेपनके सबको शक्तिकी उद्बोधक वस्तु मानता हूँ। पर यह दर्द स्वाभाविक हो जीवनके बीचसे उभरा हो तभी मैं इसके बारेमें कुछ कहा जाता हूँ क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं शरत्‌चन्द्र प्रेमी क्यों हूँ इसलिए कि उसके चरित्रोंमें एकाकीपन की आग है। राजलक्ष्मी 'अभया सभी इसी आगसे प्रदीप्त हैं। मुझे देवसेना नहीं भूलती मालविका भी नहीं। किन्तु जहाँ एकाकीपन स्मार्टी के रूपमें लाया जाता है कॉफ़ी हाउसमें बैठकर सिगरेटके धुएँमें इस भावाभाव का उद्घाटन होता है, तब मुझे बेहद बुरा लगता है। तब मैं कह देता हूँ कि यह फ़ैशनके नाम और भावुकता फ़ैशन हो गया है उनके एकाकी चरित्रोंकी आत्माको छू नहीं सका है।

वह चुप हो गयी। और उस भीड़में एक क्षणके लिए जैसे खामोशीका पहरा बैठ गया। किन्तु दूसरे ही क्षणमें इस पर्देको निर्ममतासे चीरते हुए जो व्यक्ति आये भाषा पढ़ाने वाले मास्टर सुधांशुसे मिलता-जुलता था। किन्तु शरीर काफ़ी दुबला-पतला हो गया था और नाक थोड़ी आगेको बढ़ आयी थी जिसपर मोटे शीशेकी ऐनक लगी हुई थी। वे सबको चीरते अकेले आगे आ रहे और आते ही बगावत बतर सामने शुरू कर दिये मैं तो जनाब आपको सीधा-सादा इन्सान समझता था। मगर आप तो गजब निकले। क्या यह सच नहीं है कि आप विनोबाजीके शिष्य हैं?" आपने 'भूदान और साहित्यकार' नामसे एक मज़मून लिखा है जिसे मैंने अभी-

"तो आप कम्युनिस्ट हैं, यही न?" मास्टर मुअज्जम थोड़ा गरम पड़े। और मुझे एक क्षणके लिए चुप देख उन्होंने गर्दन सीधी झुकाकर मौलवी ओर यों देखा जैसे मेरा सारा परदाफ़ाश हो गया हो। उनकी नज़र कह रही थी कि सब खोलके रख दिया अब कोई निस्तार नहीं।

"आपने यह कैसे सोचा जनाब कि मैं कम्युनिस्ट हूँ?"

'वह ऐसे कि आप अपनी कहानियोंमें ग़रीबोंकी तरफ़दारी करते हैं, ज़मींदारोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें निर्दयी और मूर्ख दिखाते हैं, बड़े लोगोंकी खिल्ली उड़ाते हैं, रूढ़ियोंका विरोध करते हैं, पुराने लोगोंकी निन्दा करते हैं, धार्मिक रस्मोंकी खिल्ली उड़ाते हैं—'

'बस बस, रहने भी दीजिए। आपकी लिस्ट काफ़ी लम्बी हो चुकी है, इलज़ाम साफ़ है, लेकिन मास्टर साहब असलमें यह आपका दोष नहीं है, हममेंसे बहुतेरे लोग अपनी बुद्धि बेचकर चीज़ोंका लेबल चिपकाके आधारपर समझनेके लिए विवश हो चुके हैं। वे मनुष्यताको टुकड़ोंमें बाँटकर देखनेके आदी हो चुके हैं। शायद वे भूल जाते हैं कि साहित्यिक सत्य और राजनीतिक सत्य मानव सत्यसे बड़े नहीं हैं। आजकी राजनीति की सबसे बड़ी ख़्वाहिश यही है कि साहित्यकार अपनी व्यक्तिगत दृष्टि खोकर रंगीन चश्माके भीतरसे मनुष्यको और वस्तुओंको देखना शुरू कर दें। यह बुरा नहीं है, चश्मे कमज़ोर दृष्टिवालोंका उपकार करते हैं, मगर जब यही चश्मे सभी साहित्यकारोंको 'प्रेस्क्राइब' किये जाते हैं, तो अंदेशा साफ़ होता है। मैं किसी भी राजनीतिक संस्थाका विरोधी नहीं हूँ, मगर मैं यह हरगिज़ नहीं मानता कि बिना चश्मेके मैं चीज़ोंको सही ढंगसे देख नहीं सकता। मैं मनुष्यको उसकी समस्याओंको अपने ढंगसे देखना चाहता हूँ। उसके टूटते हुए अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धोंको अपने ढंगसे जोड़ना चाहता हूँ। इस विचारसे चलते हुए मुझे कोई कम्युनिस्ट, कांग्रेसी, सोशलिस्ट जो भी समझना चाहे समझें, पर सत्य तो यही है कि मैं सिर्फ़ उस पार्टीका सदस्य हूँ जिसके सामने मनुष्यसे बड़ी कोई इकाई नहीं है। मनुष्यतासे बड़ा कोई

मान । आपको सुनकर अचम्भा होगा कि आज भौतिक तथा नास्तिक छायावादके देशोंमें 'टेलीपैथी'पर खोज किये जा रहे हैं। किसी चीजको पुराना मानकर उससे कतरानेकी कोशिश करना नादानी है। और आज तो हम आधुनिक बननेके मोहमें अध्यात्म ईश्वर, परलोक आदि चर्चाओंसे डरने लगे हैं। अब कभी भी न्यायका पूजक नहीं होता...और न प्रकाशसे डरकर पथभ्रष्ट हो जाना पड़ेगा। ऐसी हालतमें परामानसिक राम कृष्ण आदिका नाम हमें पुरातनपन्थताका ही पर्याय प्रतीत होने लगा है। किन्तु आप इन चीजोंको समझनेकी कोशिश कीजिए, इनके नाम और वेषसे ही चौंककर नाक-भौं मत सिकोड़िए। मनुष्यका जीवन बहुत व्यापक है। उसके मन और उसकी शक्तियाँ अत्यन्त अगाध हैं। उसकी इकाईमें केन्द्रित ज्ञान विज्ञान भाव-अनुभावकी गहराई अनेक विभिन्नताओंसे अनन्त शक्तियोंकी थाह लेना साहित्यकारका परम धर्म है। यह पुरातनतावाद नहीं वैज्ञानिक आधुनिकतावाद है। आधुनिकता कुछ चुने हुए पदार्थोंके नाम लिया रटे-भरते नहीं आती आधुनिकता निरन्तर विकासमान मानवताके प्रत्येक नवविशेषको सही-सही समझानेका दृष्टिकोण है जो इसे नहीं समझता वह वास्तविक रूपसे आधुनिकताके नाम धर्मों अथवा हत्याओंसे से प्रभावित होकर आधुनिक बननेका पाखण्ड करता है। इसीलिए मैं विज्ञानको मानवताका प्रकाशस्तम्भ कहता हूँ। इसीकी रोशनीमें हर चीजको समझनेका प्रयत्न करता हूँ। सत्य पा जाता हूँ यह दावा मैं नहीं करता पर मैं दिग्भ्रमित हूँ यह माननेको कदापि तैयार नहीं हूँ। सच पूछिए तो दिग्भ्रमित आजकी भारतीय राजनीति है। और जो लोग इस भयको चश्मा लगाकर हर चीजपर निर्णय कर देनेके आदी हैं वे न सिर्फ दिग्भ्रमित हैं बल्कि पथभ्रमित भी। ऐसे ही लोगोंको भारतीयताके नामपर भारतीय जनसंघकी और राष्ट्रीयताके नामसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघकी याद आ जाती है। ये लोग आगेको अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कहते हैं।

मित्रोंका सेतु